INTERNATIONAL MAGAZINE

ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ।
आतम पसारा करणहारा प्रभ बिनां नही जाणीऐ।

आतम मार्ग

अगसत 2026

श्री सन्त श्री ईशर सिंघ जी महाराज

If Undelivered, Please Return to
Atam Marg Office
Gurdwara Ishar Parkash, Ratwara Sahib
Near Chandigarh, P.O. Mullanpur Garibdass,
Teh.Kharar, Distt. S.A.S Nagar (Mohali) - 140901,
Punjab, India.
Tel. [illegible]

अमर कथा

सन्त वरियाम सिंघ जी
बानी एवं संचालक वि. गु. रू. मिशन

शान...।
सतिनामु श्री वाहिगुरू,
धंन श्री गुरू नानक देव जीओ महाराज।
डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ।
डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ॥ पृष्ठ- 256
फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ।
नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ पृष्ठ - 289
धारना - संसा मेरा ओ उतर गिआ - 2
संसा मेरी जी उतर गिआ - 2
पिआरे जब ते दरशन पाइआ - 2
संसार मेरा जी उतर गिआ।
ठाकुर तुम्ह सरणाई आइआ।
उतरि गइओ मेरे मन का संसा जब ते दरसनु पाइआ।
अनबोलत मेरी बिरथा जानी अपना नामु जपाइआ।
दुख नाठे सुख सहजि समाए अनद अनद गुण गाइआ।
बाह पकरि कढि लीने अपुने ग्रिह अंध कूप ते माइआ।
कहु नानक गुरि बंधन काटे बिछुरत आनि मिलाइआ॥
पृष्ठ - 1218

साध संगत जी! गर्ज़ कर बोलो सतनाम श्री वाहिगुरू। आप अपने-अपने कारोबार संकोचते हुए गुरू दरबार में पहुँचे हो। सत्संग की जो पूर्ण विधि है, उसके अनुसार यदि सत्संग किया जाये तो बहुत अधिक फल प्राप्त होता है। जब तक बात हमारी समझ में नहीं आती, घर से आ जाते हैं, कारोबार बन्द करके आते हैं परन्तु पूरा फल प्राप्त कर सकने में हम असमर्थ रह जाते हैं। वह इसलिये होता है कि ऐसे समझ लो, यदि आम भाषा में बात समझनी हो; कोई मशीन हो, उसमें बहुत सी तारें लगी हों, जगह-जगह पर पेचों द्वारा एक दूसरे को जोड़ा गया हो और उसमें से कोई आवाज़, जैसे मेरी आवाज़ आ रही है, इसी तरह से आवाज़ आती हो, तब पूरा लाभ प्राप्त हो सकता है। यदि एक दो तारें टूट जायें या ठीक तरह से न जुड़ी हों तो गड़बड़ हो जायेगी, समझ में नहीं आयेगा, लाऊडस्पीकर नहीं बजेगा, हाल में आवाज़ गूंजेगी, जैसे अब गूंज रही है, उचित तालमेल नहीं होता। जब पूर्ण विधि के अनुसार काम न किया जाये तो परिणाम भी पूरा नहीं निकलता। इसे जितना व्यक्ति चाहे सुधार कर सकता है, कोई ऐसी बात नहीं है कि यह इतना ही रहता है। आम तौर पर 14 गुण जो सत्संग सुनने आते हैं, उनमें होने चाहिये और इसी तरह से 14 गुण प्रवता बोलने वाले में होने जरूरी हैं।

इस सम्बन्ध में छठे पातशाह के पास एक बार चार सिख भाई मनसादार, दरगह तल्ली, तख्त धीर, तीर्थ उप्पल इकट्ठे होकर आए और बोले, ''सच्चे पातशाह! हम सत्संग सुनते हैं, तेरे गुरमुख अनेक प्रकार के अर्थ समझकर हमें बताते हैं, परन्तु हमारे मन में शान्ति क्यों नहीं आती? मन इधर-उधर भागता रहता है, पर जब हम भाई निवला और भाई निहालु का कीर्तन व्याख्यान सुनते हैं, उस समय हमारे अन्दर विकारों का भय उत्पन्न हो जाता है, दुर्मति को छोड़ने का हमारा मन करता है, हमें गुरमत प्राप्त होने लग जाती है और अन्दर ज्योति जलने लग जाती है। सच्चे पातशाह! ऐसा क्यों होता है? कुछ वक्ताओं का व्याख्यान सुनकर हमारा मन ही नहीं लगता। परन्तु जैसे ही हम भाई निवला और भाई निहालू का व्याख्यान सुनते हैं उस समय दूर-दूर तक उड़ानें भरती यह सुरत, एकदम हृदय में सिमट आती है।'' उस समय गुरू महाराज जी ने उन्हें बताया कि, ''गुरसिखो! सत्संग करने की विधि हुआ करती है जिसका उतारदायित्व वक्ता और श्रोता दोनों पर होता है। वक्ता पूर्ण गुणों से भरपूर होना चाहिये और श्रोता में भी पूरे गुण होने चाहिए। आम तौर पर 14 गुण वक्ता में और क्ब गुण श्रोता में होने चाहिए, फिर सत्संग का पूरा-पूरा लाभ मिलता है अन्यथा पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता।

उस समय गुरू महाराज जी से प्रार्थना की, ''महाराज! आप हमें अच्छे वक्ता और श्रोता के गुण विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें। हम आपके सेवक हैं, हमें बहुत लाभ प्राप्त होगा जब हम श्रोता तथा वक्ता के गुणों से परिचित हो जायेंगे।''

गुरू महाराज जी ने कहा, ''पहला गुण वक्ता का होता है कि उसका बोल रसीला हो, उखड़ता न हो, बहुत ही मधुर एवं मृदु तथा अभिमान रहित हो। शबद के अर्थ को पूरी तरह से जानता हो। जितने श्रोता बैठे हों, उतनी ही ऊँची आवाज़ में बोले, यदि श्रोता काफी दूर तक बैठे हैं और वह धीमी-धीमी आवाज़ में बोलता हो तो जो नज़दीक बैठे हैं, उन्हें तो सुनाई दे जायेगा, परन्तु जो दूर बैठे होंगे उन्हें कुछ भी पता नहीं चल पायेगा। छन्द, धारना इतनी ऊँची ध्वनि से गाए या पढ़े जितनी आवश्यकता हो। इसके बाद उसमें यह गुण होना चाहिये कि वह यह अच्छी तरह जानता हो कि विषय का विस्तार कैसे किया जाता है और समेटा

किस तरह जाता है। दोनों बातों की जानकारी रखता हो। संगत पर नज़र रखे कि जो कुछ वह बोल रहा है, उसे संगत ध्यान से सुन रही है या नहीं। श्रोताओं की वृति को गहराई से विचारता हो। जितनी बात उनकी समझ में आ जाये, उतना ही विस्तार करे। जहाँ पर वृति उदास होने लगे, मन उचाट होने लगे, वहीं पर ही कथा को समाप्त कर दे। कथा के प्रसंग को वह बहुत ही प्रेम के साथ बखान करना जानता हो। अपने वचनों को इतने प्यार के साथ उच्चारण करे कि श्रोताओं का प्यारा लगने लगे। पाँचवा गुण यह है कि जो भी वचन उसके मुख से निकले वे सत्य वचन हो। निरर्थक वचन सत्संग में न बोले। श्रोताओं की अवस्था के अनुसार, कर्म, उपासना तथा ज्ञान की बात करे। शबद के सिद्धान्त का पूरी तरह से व्याख्यान कर सकता हो, निर्णय लेकर, अर्थ सुनाता हो।

छठा गुण यह हुआ करता है कि जो भी संशय कथा करते समय पैदा होता प्रतीत हो, उसे बहुत से उदाहरण देकर स्पष्ट करे। यदि कोई प्रश्न करे तो उसका उतर देने की समर्थ हो। शबद के आशय को पूरी तरह से निखार कर वर्णन कर सकता हो तथा उसके स्पष्टीकरण में प्राचीन साखियाँ या महापुरुषों द्वारा दिये गये प्रमाणों का उल्लेख हो। श्रोता की बुद्धि का अनुमान लगाकर, ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करे, जिन्हें श्रोता अच्छी तरह समझ सकता हो, ऐसा न हो श्रोता को समझ ही न आये और वह स्वंय अपनी विद्वता प्रकट करता रहे। जिस प्रकार के ज्ञान को श्रोता जानता हो, उसी प्रकार के दृष्टान्त प्रस्तुत करे। सभी मतों का पूर्ण ज्ञाता हो। शास्त्रों के झन्झट, तर्क-वितर्क से पूरा परिचित हो। किसी अन्य मत पर तर्क न करने वाला हो और उतने ही वचन उस शास्त्र में से ले, जितने उसके अपने सिद्धान्त से मिलते हों। आठवाँ गुण यह है कि कथा में विक्षेपता पैदा न होने दे। जो कथा का प्रसंग चल रहा हो उसके अनुसार ही वचन बोले। चालू प्रसंग को छोड़कर अन्य इधर-उधर भी जो बातें प्रसंग से सबन्ध न रखती हों, न करे। दूसरे मतों की केवल वही साखियाँ लें, जो गुरू सिद्धान्त से मिलती जुलती हों और आशय को स्पष्ट करने में सहायक हों। नौवाँ गुण है कि वक्ता का जो आसन हो, वह बिल्कुल दोष रहित हो। रीढ़ की हड्डी को बिल्कुल सीधा करके बैठे, उसी प्रकार मन को भी बहुत साफ रखे। दसवां गुण यह होता है कि जो संगत बैठी हो, उन्हें प्रसन्न करने के लिये भी कभी-कभी समयानुसार हास्य प्रसंग सुनाये, परन्तु वे ऐसे वचन होने चाहिए उनका रंग, उनके भाव, गुरू से प्यार पैदा करें। इस प्रकार सारी सभा को अपने वश में रखे। इस बात को जानता हो कि श्रोता, सन्मुख होकर सावधानी से सुन रहे हों, कोई इधर-उधर न झांकता हो। श्रोता इस बात की प्रतीक्षा करते हों कि अब आगे कोई जरूर नई बात बताएगा। उसमें अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैं बहुत अच्छा बोल रहा हूँ और श्रोता मेरी बात सुन रहे हैं। हर प्रकार के अभिमान से रहित होकर, मन को सदा विनम्रता में रखे। अपने अन्दर गुण होते हुए भी, मन को विनम्र रखकर, अभिमान न करे, किसी का दिल न दुखाए। जान बूझ कर किसी के सन्मुख तर्क न करे। अपना जीवन पूरी तरह से धार्मिक हो, श्रोताओं में उसके वचन सुनने के लिये श्रद्धा हो। तेहरवां गुण होता है कि जो भी वचन करे, पहले स्वंय उन पर अभ्यास करे, अनुभव प्राप्त करे, फिर वचन करे। चौदहवां बड़ा गुण सन्तोष धारण करना होता है। अपनी प्रालभ्ध पर शाकर रहे। ऐसा ढंग प्रयोग न करे कि श्रोताओं से पैसे हासिल करता हो। सहज भाव से ही यदि कोई बाणी का मान करता हुआ भेंट अर्पण करता हो, तो वह ले ले। बिना याचना के जो कुछ भी मिलता है, वह अमृत जैसा होता है। मन में याचना न करे कि मुझे बहुत धन मिले, वस्त्र मिलें। सो ये 14 गुण वक्ता में होने जरूरी हैं। संक्षेप में मैं फिर दोहराता हूँ - 1. रसीले सुर में बोल सकता हो। 2. श्रोताओं की रूचि अनुसार विस्तार से समझा सकता हो 3. आवश्यकता अनुसार संक्षिप्त कर सकता हो 4. दिल लुभाने वाली कथाएं, कहानियाँ 5. स्पष्ट वाक्य बोलना 6. संशय दूर कर सकने की योग्यता हो 7. सभी शास्त्रों से परिचित हो 8. कथा में चल रहे प्रसंग के उलट प्रमाण न दे 9. उचित आसन, सुन्दर लगने वाला आसन ग्रहण करे। ऐसे ही आँख, नाक कानों में अंगुलियाँ न मारता रहे, सिर पर हाथ आदि न फेरता रहे, न ही बिना किसी मतलब के इशारे करता रहे, अच्छी तरह से सीधा बैठे। 10. श्रोताओं के मन को जीतने वाला हो, 11. सभा को जीतना 12. अहंकार से रहित हो 13. धार्मिक विचारों वाला हो। कथनी और करनी में कोई भेद न हो। सुने सुनाए, दूसरों के सुनाये हुए वचनों को न बोले 14. महान गुण, सन्तोषी हो, माया की ओर ध्यान न दे।

इसी प्रकार श्रोता के भी 14 गुण हुआ करते हैं। श्रोता में मन, वचन, कर्म से वता के प्रति श्रद्धा होना आवश्यक है। दूसरा श्रोता में अहंकार नहीं होना चाहिए। तीसरा सुनने में पूरी लगन, प्रीत होनी चाहिए। चौथा मन में कुतर्क करने वाला नहीं होना चाहिए। पाँचवां चंचल न हो, शरीर द्वारा, वचनों द्वारा किसी प्रकार की चतुराई न दिखाए। वक्ता के व्याख्यान को समझने वाला हो, मन को एकाग्र करके सुनने वाला हो। छठी उसमें यह योग्यता हो कि सत्संग में सुने गये वचनों में से कोई प्रश्न करने का गुण भी हो। सातवां सभी ग्रन्थों को उसने सुना हो। आठवाँ आलसी न हो, रीढ़ की हड्डी सीधी रख कर या नेत्र बन्द करके, फुरने रहित होकर सुने, या नेत्र वक्ता के चेहरे पर केन्द्रित हो। नौवां जब वह

सुन रहा हो, उस समय नींद तथा आलस्य को पास न फटकने दे। दसवां उसका स्वभाव ऐसा होना चाहिए कि मिलकर, बांट कर खाने वाला हो। ग्यारहवां जो कुछ सत्संग में सुने, उसे मन में धारण करे। बारहवां गुरमत सिद्धान्त का किसी प्रकार भी विरोधी न हो जैसा कि उसने सुना है कि गुरू महाराज जी ने फ़रमान किया है –

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।
सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ॥

पृष्ठ – 10

इस पर अपनी मति से कुतर्क न करे। इन्हें पूर्ण सत्य वचन समझ कर अपने जीवन में अपनाए। सतगुरू के वचनों पर मन में कुतर्क न करे। तेहरवाँ गुण जो बहुत जरूरी है वह है, संगत में बदबूदार कपड़े पहन कर, बिना स्नान किये ना जाए। यथा शक्ति साफ स्वस्छ कपड़े पहन कर जाये, ऊबासियाँ न ले, पेट साफ करके जाये, गन्दी हवा बदबू न छोड़े। इधर-उधर देखने वाला न हो, वक्ता के वचनों को पूरे ध्यान के साथ सुनने वाला हो। चौदहवां-श्रोता किसी प्रकार का पाखण्ड न करे, जैसे कहीं बहुत ही प्यार वाली कथा चल रही हो, उसके अन्दर की भावना जागे ही न, परन्तु आँखों में से आँसुओं की धारा बहाकर, दूसरों को जताने की कोशिश करे। जब श्रोता तथा वक्ता में आवश्यक गुण हों तो गुरू महाराज का फ़रमान है –

कई कोटिक जग फला सुणि गावनहारे राम॥

पृष्ठ – 546

जब तक ये 28 गुण आपस में मेल नहीं खाते, तब तक जो सत्संग का महान फल है, वह हम प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

थोड़ा सा भेद है – इस बात में। सो आप सभी काफी समय से सत्संग करते आ रहे हो, परन्तु यदि जीवन में सावधानी प्रयोग न की जाये, मनुष्य मेहनत बहुत करता है पर उसका परिणाम उसे उतना नहीं मिलता। जैसे एक किसान है, उसके पास जमीन है, खेती करता है। उसे यह न पता हो कि कौन से कोने में कितनी गहराई पर बीज बोया जाये और खाद किस प्रकार की डालनी है, खाद बीज को स्पर्श करनी चाहिये, बीज से अलग नहीं चाहिये; उसके बाद उसे यह भी पता होना चाहिये कि खेत में सुहागा कितना चलाना है, सिचाई कब करनी है? खाद कब डालनी है? कौन-कौन से दिन इसका नदीन निकालना है? तब जाकर कहीं पूरी फसल ले सकेगा। जिस किसान को न तो वत (मौसम गर्मी सर्दी आदि) का पता हो, न खाद डालने के बारे में जानता हो, न ही अन्य वतरो (खेती सम्बंधी जानकारी) को जानता हो; चैत के महीने में यदि गेहूँ की फसल को काफी पानी लगा दो, तो गेहूँ गिर जाया करती है। फसल चाहे कितनी भी बढ़िया क्यों न हो, आधा झाड़ रह जाया करता है। धान की फसल है, इसमें यूरिया ज्यादा डाल दिया तो काला नज़र आयेगा, दिल बहुत खुश होगा, पर जब फल देखेगा तो उस समय चौथाई हिस्सा भी फल नहीं मिलता। खेत की ओर खड़ा होकर झांकता रह जाता है कि यह क्या हो गया? सबसे बढ़िया मेरी फसल थी, सभी देखते थे, खुश होते थे। साथ का कमज़ोर निश्चय वाला कहता है, "न भाई! तेरी फसल तो बढ़िया थी, तूने इस पर काली तोरी नहीं बान्धी नज़र लग गई किसी की? होता क्या है, नज़र-नुज़र कुछ नहीं होती, उसने यूरिया बहुत डाल दिया होता है। इससे फसल एक दम जोर पकड़ लेती है, जब बीज बनता है तो उस समय गिर जाती है और उसे बिमारी लग जाती है। सो मेहनत में तो कमी नहीं है, कमी किस चीज़ में है कि पूरी विधि का पता नहीं था, पूरा ज्ञान नहीं था। सो इसी प्रकार सारी दुनियाँ के काम, चाहे कोई कारखाना लगाओ, कोई ट्रांस्पोर्ट का काम करके देख लो, कोई व्यापार करके देख लो, यदि पूर्ण विधि नहीं आती, तो मनुष्य को उसका पूरा फल प्राप्त नहीं हो सकता, पैसा चाहे जितना मर्जी खर्च कर ले।

एक प्रेमी मेरे पास आया करता है, "जी! मैं बहुत अच्छा कारीगर हूँ, लोग इस बात की दाद देते हैं; मेरे हाथों द्वारा किये गये काम के मुकाबले में और कोई भी ऐसा काम नहीं करके दिखा सकता, परन्तु फिर भी पता नहीं क्या कारण है कि मेरे पास ग्राहक बहुत कम आते हैं? अनजान लोगों के पास क्यों ज्यादा जाते हैं?" उसके चेहरे की ओर देखते हुये मैंने कहा, "बेटा! शुक्र है कि तेरे पास आ जाते हैं, तेरे पास तो कोई भी नहीं आना चाहिये।" कहने लगा, "जी! क्या बात है?" मैंने कहा, "तेरे माथे पर त्यौरियाँ चढ़ी हुई हैं, आँखे तेरी इतनी घमंडी है जो यह दर्शाती है कि मैं बहुत बड़ा काम जानता हूँ। ग्राहक देखकर ही डर जाते हैं, फिर तेरी ग्राहक स्त्रीयाँ हैं, वे तो वैसे ही किसी दुकान पर नहीं जातीं; तू अपने आपको ठीक कर, **Smiling face** (मुस्कराता हुआ चेहरा) बना, बात करने का तरीका सीख। फिर तेरे पास सभी कुछ आ जायेगा।"

इस तरह से दुनियाँ का कोई काम कर लो, भजन बन्दगी कर लो, सत्संग कर लो, इसका सही ढंग हुआ करता है। जब तक पूरी विधि के साथ सत्संग नहीं होता, तब तक पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। जो कर लेते हैं, वे बहुत जल्दी उन्नति कर जाते हैं। सत्संग सुन लिया, सुन कर मन में बसा लिया तो महाराज फ़रमान करते हैं –

गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ।

दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥ पृष्ठ – 4

दुख तो वहीं पर ही गिर जायेंगे यदि तीनों चीज़ें अपना लीं। सुख लेकर घर जाओगे। यदि साथ निन्दा लेकर गये, चुगलियाँ लेकर गये, ईर्ष्या से मन साफ नहीं हुआ, कोई अच्छा है, परमेश्वर ने उसे ऊँचा उठाया है और उसे नीचा गिराने के लिये दिल में इरादे हैं, तो भाई! तूने अभी सत्संग नहीं किया अभी तुझ पर सत्संग का प्रभाव नहीं पड़ा। आता तो है पर पर्तें जमी हुई हैं तेरे अन्दर मैल की, तुझे अभी प्राप्ति नहीं हो सकती। बहुत जरूरत है तप की, तपस्या की, अपने मन को साधने की, मन ही असली चीज़ है। जब तक मन नहीं साफ होता, तब तक काम नहीं बनता। पहले मन को यह पता हो कि मैं सत्संग में क्यों जाता हूँ? जो लक्ष्य सामने है – लक्ष्य छोटा भी होता है, बड़ा भी होता है, उस समय जो महान लक्ष्य सामने लेकर आता है, बड़ी-बड़ी उपलधियाँ प्राप्त करता है, जो छोटा लक्ष्य सामने रखकर आता है उन्हें छोटी-छोटी प्राप्तियाँ हो जाती हैं। लक्ष्य सामने होना चाहिए। सो मन की तो वही बात है, इसलिये महाराज जी ऐसा फ़रमान करते हैं –

धारना – साध पिआरिआ!
पहिलां मन आपणे नूँ – 2
मन आपणे नूँ, पहिलां मन आपणे नूं – 2
साध पिआरिआ!................................. – 2

ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ।
मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ॥
पृष्ठ – 342

यदि मन को सुधार लिया तो सुख प्राप्त होगा। मन बहुत बड़ा मित्र भी है, बहुत बड़ा दुश्मन भी है। यदि शत्रुता पर उतर आए तो मानस जन्म को कौड़ियों के भाव बिकवा देता है। यदि मित्रता पर उतर आए तो गिरे हुये, नीच, महापापी को भी बैकुंठ धाम, सचखण्ड पहुँचा देता है। यह सारा मामला मन का है। पहली बात होती है मन में वैराग होना। दुनियाँ में रहना नहीं, संसार को झूठा समझना। क्षण भंगुर सुख है इसका। क्षण भंगुर उसे कहते हैं जिसका नाश हो जाये, जो सदा नहीं रहता। कोई भी वस्तु सदा नहीं रहती। जिसकी मन के साथ पकड़ हो जाये वह दुखी हुआ करता है, दुखी बहुत होता है, बेचैनी, तड़पन होती है, अपना मानस जन्म हार जाता है। सो जो मन है, जब यह साथ देने लग जाता है तो सबसे पहले वैराग पैदा होता है, दुनियाँ के सारे रसों को, भोगों को, प्राप्तियों को, तुच्छ समझता हो कि ये तो कुछ भी नहीं है। जिनके मनों में वैराग जाग्रत हुआ उन्होंने बहुत बड़े-बड़े त्याग कर दिये।

गोपी चन्द उज्जैन का राजा था। ऐसा बताते हैं कि उसकी सभी रानियाँ पदमनियाँ थी। पदमनी सौन्दर्य की खास जाति हुआ करती है। सौ रानियाँ थी उसकी, अति कोमल गुणों से युक्त, आज्ञाकारिणी, साथ देने वाली। माँ ने एक दिन ऊपर से अचानक गोपी चन्द को आँगन में नीचे स्नान करते देखा। देखते ही वहिण (भावनाओं) में बह गई, चली गई भावनाओं में कि मेरा पुत्र कितना सुन्दर है? कितनी सुन्दर देह है इसकी? कैसा सोने जैसा रंग है इसका? और एक दिन ऐसा आयेगा यह बाल जवानी, बुढ़ापा..........। तीन अवस्थाएं शरीर की हुआ करती हैं और अब वह भरपूर जवानी में है और जवानी बीतती चली जा रही है, इसे किसी दिन बुढ़ापे ने दातों से काटकर खाना शुरू कर देना है। आखिर जवानी का नामों-निशां भी नहीं रहेगा, खत्म कर देना है। बचपन को जवानी खा जाती है, जवानी को बुढ़ापा खा जाता है, फिर एक दिन आता है, जब इसने संसार से जाना होता है और इसकी अर्थी निकाली जा रही होगी और यह सुन्दर देही, जिसको मैंने बड़े प्यार के साथ पाला है और इसे यह रूप देने में सहायता की है, इसे आग की भेंट किया जायेगा और अग्नि ने इसे जलाकर राख कर देना है, इसका नामोनिशां मिट जायेगा। ये विचार जहाँ दिमाग में उठ रहे हैं, वहाँ पर साथ ही साथ उसे ये दृश्य भी दिखाई दे रहा था, इसकी चिता जलती नज़र आ रही थी और अपने आप में खो गई। उसी बात में लीन हो गई, वैराग उत्पन्न हो गया, आसुओं का जो प्रबल प्रवाह था, रोक न सकी और नेत्रों में से आँसू गिरने लगे। गोपी चन्द नीचे स्नान कर रहा था, आसुओं का गर्म-गर्म जल, इसकी पीठ पर जा गिरा, बार-बार आसुओं के कण गिरते हैं और उसकी माँ बेसुध हुई बैठी है। बालकोनी में से नीचे झुकी हुई बैठी है। उस समय गोपी चन्द ने ऊपर की ओर नज़र उठाकर देखा और सोचा कि उसकी माँ न जाने क्यों रो रही है? इतने आँसू गिर रहे हैं, एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, जल्दी-जल्दी स्नान करके ऊपर गया। माँ को अपने आँचल में भर लिया कहने लगा, ''माता! इतना दुख तेरे अन्दर छिपा पड़ा हुआ है, क्या मेरे से कोई गुनाह हो गया है? कोई गलती हो गई है? किसी रानी ने कोई गलती कर दी है? किसी सेवक ने कोई अपराध किया है? मुझे बता, मैं जल्दी से जल्दी इसका फैसला कर देता हूँ।''

माँ कहने लगी, ''बेटा! किसी ने कुछ नहीं कहा।''

''फिर ऐसे आसुओं की झड़ी क्यों चल रही है?''

''पुत्र! मैं क्या बताऊँ? मैं भविष्य देख रही थी। मानस जन्म की तुझे प्राप्ति हुई है और इस मानस जन्म को सभी ऐसा बताते हैं –

कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारैबार।

जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार॥

पृष्ठ – 1366

यह इतना कीमती है कि एक बार यदि हाथों से निकल गया, फिर यह पुनः नहीं लौटता। सभी धर्म ग्रन्थ ऐसा फ़रमान करते हैं –

धारना – वडिआँ भागां नाल मिल गई देही – 2, 2

मानस देही–मानस देही – 2

भाग वड्डे तां मिल गई..............–2

बड़ी मुश्किल से 83,99,999 यौनियाँ बीतने के बाद, करोड़ों वर्षों की अनेक कठिनाईयों के बाद, यह मनुष्य जन्म का जामा, इस जीव आत्मा के हाथ में आया। यह बारी हुआ करती है, परमात्मा को मिलने की –

भई परापति मानुख देहुरीआ

गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।

अवरि काज तेरै कितै न काम।

मिलु साध संगति भजु केवल नाम।

सरंजामि लागु भवजल तरन कै।

जनमु ब्रिथा जात रगि माइआ कै॥ पृष्ठ – 12

बेटा! यह जिन्दगी भोगों में, रसो–कशों में पड़कर व्यतीत हो जाती है और एक दिन बुढ़ापा आ जायेगा और फिर बुढ़ापे के पश्चात मौत आ जायोगी और मौत के पश्चात यह सम्भाल कर रखा हुआ सुन्दर शरीर, साथ नहीं जायेगा, आग में जलकर भस्म हो जायेगा। दौलत, रानियाँ किसी ने भी साथ नहीं देना। बेटा! तेरा कितना सुन्दर शरीर है। पर एक दिन इसने भी राख की ढेरी हो जाना है, वह भी हवा ने उड़ा देनी है, कहीं भी नामों निशा नहीं रहेगा, हड्डियाँ पानी में बह जायेगीं यह सुन्दर चेहरा, सुन्दर शरीर, पुनः कहीं भी दिखाई नहीं देगा।

गोपी चन्द गम्भीर हो गया। कहने लगा, ''माँ! फिर मैं क्या करूँ?'' कहने लगी, ''बेटा! किसी पूर्ण तत्व वेता महापुरुष को जाकर मिल। उससे जाकर पूछ कि अविनाशी पद कैसे प्राप्त होता है? जहाँ पर पहुँच कर मनुष्य दोबारा जन्म मरण के चक्कर में नहीं पड़ता। जहाँ सदीवी जिन्दगी प्राप्त करके, अविनाशी पद पर पहुँच कर, महान सुख की प्राप्ति होती है। सो बेटा! इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह मानस जन्म मिला है।''

सुनते ही गोपी चन्द को वैराग हो गया। उस समय एक महात्मा आए हुए थे, जलन्धरी उनका नाम था। उनके पास जाकर गोपी चन्द ने योग शिक्षा ली और उसी समय राज पाट छोड़कर चला गया। इसे वैराग कहते हैं। यह जरूरी नहीं है कि हम घर बार छोड़कर चले जाएं लेकिन हमारा मन मान जाए कि दुनियाँ के भोग, हमारे रास्ते में बहुत बड़ी रूकावट हैं।

जब वैराग उत्पन्न हो जाता है फिर दूसरी अवस्था शुरू हो जाती है – सुनने की। फिर वह सुनता है, पूरा ध्यान लगाकर सुनता है। मन को एक सैकिण्ड के लिये भी इधर उधर नहीं भटकने देता कि कहीं कोई बहुत जरूरी वचन रह न जाये, निकल न जाये। फिर उसे हृदय में धारण करता है, ऐसा नहीं कि सुनकर भूल जाता है। जो कच्चे होते हैं, उन्हें भूलता है परन्तु जो पक्के, दृढ़ इरादे वाले होते हैं, उन्हें नहीं भूला करता। वे तो सोचते ही रहते हैं कि क्या कहा था? क्योंकि गुरबाणी जो है यह हमें रास्ता दिखाती है। फिर जो सुना है, उसे मानते हैं। जब मानता है, फिर काम बनना शुरू हो जाता है –

मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधार।

मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।

ऐसा नामु निरंजनु होइ। जो को मंनि जाणै मनि कोइ॥

पृष्ठ – 3

इस प्रकार जब हम सत्संग करते हैं, इसमें मैंने प्रार्थना की है कि 14 गुण हुआ करते हैं बोलने वाले के अन्दर। बोलने वाले में हों दस गुण, चार न हों, असर नहीं हुआ करता। चौदह के चौदह गुण जरूरी हैं। यदि एक तार काम न करे, मशीन वहीं पर खराब हो जाती है और चलती नहीं है। इसी प्रकार श्रोता में भी 14 गुण होने चाहिये। जब तक ये 28 तारें नहीं मिलती, तब तक सत्संग का असर नहीं हुआ करता। जब ये मिल जाती हैं, तब हम पूरी तरह से सावधान होते हैं और बाणी फिर बाण मारती है हृदय में; घायल करती चली जाती है, इरादे बनते चले जाते हैं, फिर सत्संग का पूरा–पूरा लाभ प्राप्त होता है।

गुरू नानक देव जी सुलतानपुर में मोदी का कार्य भार सम्भाले हुए थे। अभी आपने संसार के उद्धार का कार्य शुरू नहीं किया था। आप जी की जो दैनिक दिनचर्या थी, अमृत बेला में उठकर बेई नदी के जल में स्नान करना, तत्पश्चात बेई नदी के किनारे पर बैठकर, आपने समाधिस्थ हो जाना, दिन निकलने पर घर आना, कुछ थोड़ा बहुत खा पीकर फिर अपने कारोबार में लग जाना और उसके बाद वहाँ अपना कार्य करना और शाम को आकर बहुत से साधु, महापुरुष, बन्दगी करने वाले, जिज्ञासु, दर्शनार्थ आए हुए होते, वहाँ फिर आपने कीर्तन करना, उसके बाद विचार करना। इसी प्रकार काफी देर, रात तक वार्तालाप करते रहते और प्रतिदिन का कार्यक्रम ही ऐसा था, इसके साथ–साथ जो बिछुड़ी हुई रूहें थीं उन्हें प्रेरित करके, अपने पास बुला लेते थे और यदि जरूरत होती तो स्वंय भी चले जाते थे।

आज जब आप अमृत बेला में जागे तो आपने एक विरहायुक्त याचना करती हुई आवाज़ सुनी। कोई रूह विलाप रही है, मेरा रास्ता बहुत गलत है, जो कुछ मांगा जा रहा है, वह कुछ मिल

नहीं रहा क्योंकि ध्येय गलत है ? जिसके पास टार्च न हो, उस समय उससे इस की माँग करे, वह नहीं दे सकता। सो महाराज ने देखा कि यह जिज्ञासु पूरा है, पर इसे रास्ता नहीं मिल रहा, अन्धेरे में आवाज़ें लगा रहा है। उस समय आप कारोबार से निवृत होकर, दूसरे दिन मलसीहां चले गये, पास ही था। वहाँ पर जाकर आपने सत्संग किया। उसी इलाके का एक चौधरी था जिसका नाम भगीरथ था, उसने भी सुना कि कोई महापुरुष आए हैं और उनके वचनों में तासीर है। यदि कोई उनके वचन सुनता है तो वह मस्त हो जाता है और अन्दर कई भाव प्रकट हो जाते हैं और चेहरा नरोआ हो जाता है और उसका बातचीत का ढंग भी नया हो जाता है। मुझे रोते हुए कई दिन रात बीत गये, मेरी पुकार सुनकर रात सपने में देवी माता ने गुरू नानक जी का पता बताया कि जिस वस्तु की तुझे जरूरत है, वह मेरे पास नहीं है, वह गुरू नानक जी के पास है जो सुलतानपुर में अभी गुप्त रहकर मोदी का काम कर रहे हैं। हो सकता है, मैं उनके पास जाकर प्रार्थना करूं, वह मेरी सहायता करें।

शाम को भगीरथ वहाँ पहुँच गया, जहाँ गुरू नानक पातशाह ठहरे हुए थे। वहाँ पर इसने वचन सुने, उसके पश्चात ग्यारह बजे सभी के सभी थोड़ी देर के लिये वहाँ पर बिराजे और फिर डेढ़ बजे उठकर स्नान किया। चौधरी भगीरथ के लिये यह नई क्रिया थी। अब तो हमारे लिये भी नई चीज़ है क्योंकि हम अमृत बेला की सम्भाल करने से हट गये। महाराज कहते हैं, ''जो अमृत बेला होता है, जहाँ भी हो, जिस देश में भी हो, वह ऐसा समय होता है कि उसे ब्रह्म मुहुर्त कहते हैं और बहुत से महात्मा यह कहते हैं कि रूहानियत की बख्शीश का दरवाज़ा अमृत बेला में खुला करता है –

जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति॥ पृष्ठ – 1384

जो जागते हैं, वे वरदान प्राप्त कर लेते हैं। सो उनके मनों में चाव होता है –

चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ॥

पृष्ठ – 146

उनके अन्दर विचार पैदा होता है कि यह चारपाई अच्छी नहीं लगती क्योंकि चाउ (शौक) होता है कि जल्दी-जल्दी उठकर, नाम का धन इकट्ठा करें, प्रभु प्यार में लीन हो जायें। सो इस समय उनके मन में चाव पैदा होता है –

तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ॥

पृष्ठ – 146

उनका प्यार दरियाओं के साथ हो जाता है। दो प्रकार के दरिया होते हैं – एक तो वह जहाँ पर जाकर स्नान किया जाये। दूसरा दरिया होता है जैसे तुम बैठे हो, यह सत्संग रूपी दरिया बह रहा है। इसमें मन का स्नान होता है। दूसरे दरिया में, पानी में शरीर का स्नान होता है। सो मन तथा शरीर दोनों का स्नान जरूरी हुआ करता है –

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए
सु भलके उठि हरिनामु धिआवै।
उदमु करे भलके परभाती
इसनानु करे अंम्रितसरि नावै॥ पृष्ठ – 305

अमृतसर में, सत्संग के सरोवर में, मन का स्नान करवाना है और पानी के साथ तन का स्नान करवाना है। उस समय के बारे में ऐसा फ़रमान है –

धारना – अंम्रित बेले ओ, कौण जागदे – 2, 2
कोई जागदे ने राम पिआरे – 2
अंम्रित वेले ओ..........।
भिंनी रैनड़ीऐ चामकनि तारे।
जागहि संत जना मेरे राम पिआरे॥ पृष्ठ – 459

तारे चमक रहे हैं, शान्त वातावरण है, सारा वातावरण स्थिर है, कोई शोर शराबा नहीं है, उस समय 'जागहि सन्त जना मेरे राम पिआरे' कौन जागते हैं ? जिनके हृदय प्रभु के प्यार ने बीन्ध दिये हैं और कोई नहीं जागता –

सीने खिच्च जिन्नां ने खाधी ओ कर अराम नहीं बहिंदे।
निहुं वाले नैणां की नींदर ओ दिने रात पए वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी है टोर अनंत उन्हां दी
वसलों उरे मुकाम न कोई सो चाल पए नित रहिंदे।

डा. भाई वीर सिंघ जी

सो इस प्रकार अमृत बेला में जाग उनकी खुलती है जिसके मन में प्रभु का प्यार हुआ करता है, आकर्षण हुआ करता है, अन्य किसी की नींद नहीं खुलती। सो अमृत बेला में उठे और भी कई प्रेमी गुरू महाराज जी के पास जाया करते थे, सभी उठे और स्नान करने के बाद समाधिस्थ हो गये। दिन निकला तो उस समय महाराज जी ने वचन किये कि साध संगत जी ! जो सत्संग हुआ करता है, वहाँ प्रभु के नाम के अतिरिक्त और कोई बात नहीं हुआ करती, झुन्झलाहट की बातें नहीं हुआ करतीं, वहाँ पर सनातन बातें हुआ करती हैं, टिकाव की बातें हुआ करती हैं, मन जो है वह अपने घर को वापिस दौड़ता है, बाहर भागना, उछलना छोड़कर आनन्द के घर में लीन हो जाया करता है। सो ऐसा फ़रमान है कि वहाँ सबसे उतम चीज़ है जिसे 'अमृत' कहते हैं, वह सत्संग में बाटां जाया करता है और लेते कौन हैं ? कहते हैं, ''जिन पर परमेश्वर की कृपा हो। वे आते हैं उठकर और आकर सत्संग किया करते हैं। कष्ट सहन करके, उस अमृत को अपनी श्रद्धा रूपी आंचल में डलवा कर, उसका आनन्द लेते हैं। ऐसे

फ़रमान है पढ़ लो –

धारना – सतिसंग विचों ओ, अंम्रित छकदे – 2
हुंदे भाग जिन्हां दे पूरे – 2, 2
सतिसंग विचों ओ.........।

ओथै अंम्रितु वंडीऐ करमी होइ पसाउ।
कंचन काइआ कसीऐ वंनी चड़ै चड़ाउ।
जे होवै नदरि सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ।
सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि।
ओथै पापु पुंन बीचारीऐ कूड़ै घटै रासि॥ पृष्ठ – 146

साध संगत में अमृत, नाम रूपी अमृत, ज्ञान रूपी अमृत बांटा जाता है और जिन पर परमेश्वर की कृपा हो, वे इस अमृत को अपने हृदय में ग्रहण करते हैं।

वहाँ जो शरीर की मनमर्ज़ी की आदतें होती हैं, उन को कसा जाता है, जैसे ढोलक को कसा जाता है, जब इसकी आवाज़ ढीली हो। यदि कृपा दृष्टि हो गई, फिर वह जन्म मरण के दुख में नहीं आता। 'सती पहरी सतु भला बहिऐ पढ़िऐ पासि' कहते हैं सात पहरे में सबसे अच्छी और भली बात यह है कि पढ़े लिखों के पास बैठे। कहते हैं, ''जी! पढ़े लिखे उलटी-उलटी बातें करते हैं, गलत बातें करते हैं, निन्दा करते हैं, चुगलियाँ करते हैं।'' महाराज कहते हैं –

पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा॥
पृष्ठ – 140

उन लोगों के पास नहीं बैठना, जिनके अन्दर क्रोध है, लोभ है, अहंकार है, निन्दा है, चुगली है, ईर्ष्या है, वैर है। जिनके मनों में गलत बातें हों, उनके पास नहीं बैठना –

नानक सो पड़िआ सो पंडितु बीना
जिसु राम नामु गलि हारु॥ पृष्ठ – 938

जो श्वांस-श्वांस परमेश्वर का नाम जपते हैं, वे पढ़े हुए हैं। कहते हैं, ''महाराज! उनका दर्जा कैसा होता है? जैसे यहाँ सांसारिक पढ़ाई पढ़ी हो तो प्रोफैसर लग जाता है, कोई डाक्टर बन जाता है, इस पढ़ाई का पढ़ा हुआ क्या बनता है? महाराज कहते हैं –

जिना सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु।
धनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु॥ पृष्ठ – 319

कहते हैं, पूरे महात्मा होते हैं, ब्रह्मनेष्टी, ब्रह्मस्त्रोती, ब्रह्मवक्ता क्योंकि पढ़े हुए वही होते हैं, शेष संसार तो अनपढ़ ही है, क्योंकि यह पढ़ाई किसी काम की नहीं –

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥
पृष्ठ – 467

जिन्हें संसार पढ़ा हुआ कहता है, वे हउमै के झखना झाख (बे-फजूल) के कामों में पड़े हुए हैं। पढ़े हुए केवल वही है, चाहे उन्हें एक अक्षर भी न आता है, जिन्होंने आत्मिक विद्या सीख ली, अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया, निज स्वरूप की प्राप्ति हो गई और परमेश्वर का ज्ञान, जिनके हृदय में बैठ गया कि वह अन्दर बाहर सभी जगह है –

जिमी जमान के बिखै समसति एक जोत है।
न घाट है न बाढ है न घाटि बाढि होत है॥
अकाल उसतति

यही एक बात है, जिसने पढ़ ली, उसने सभी कुछ पढ़ लिया। महाराज कहते हैं, ''उसकी संगत में बैठो।''

''क्या होगा महाराज उनकी संगत में बैठने से?''

कहते हैं, ''वहाँ पर बुरी बातें, आदतें छुड़वा दी जायेंगी, पाप पुण्य का निर्णय हो जायेगा।''

पुन्न दानु जो बीजदे सभ धरमराइ कै जाई॥ पृष्ठ-1414

बता देगें कि यह पाप का बेड़ा है, यह पुण्य का बेड़ा है, निष्काम कर्म कर ले। उससे तेरे अन्तसकरण की मैल दूर हो जायेगी, पाप का रस अन्दर से कम होना शुरू हो जायेगा, झूठ की रास हृदय में से कम हो जायेगी, मलीन अन्तसकरण पवित्र हो जायेगा, मैल उतर जायेगी। जब पवित्र हो गया, उसमें से झांक कर देखेगा, तुझे अपने आप नज़र आ जायेगा, तेरे अन्दर से परमेश्वर नज़र आ जायेगा, लेकिन जो खोटे हैं, वे वहाँ नहीं पहुँच सकते, वे फैंक दिये जाते हैं –

ओथै खोटे सटीअहि खरे कीचहि साबासि॥ पृष्ठ –146

जो खरे हैं उन्हें शाबाशी मिलती है। पाखण्ड करने वाले कपटी, धोखेबाजों, दूसरों का माल दबाने वालों और पाखण्ड का सहारा लेकर धर्मात्मा कहलाने वाले; कहते हैं वे यहाँ पर तो धर्मात्मा कहलवा सकते हैं, भेष की आड़ लेकर, लेकिन दरगाह में उन्हें जोर से घुमा कर बाहर फैंक दिया जाता है –

बोलणु फादलु नानका दुखु सुखु खसमै पासि॥
पृष्ठ – 146

वाहिगुरू स्वंय ही जानता है। यदि दुख आ गया, सुख आ गया, मनुष्यों का सहारा लेता फिरता है, वाहिगुरू के पास प्रार्थना कर, तेरा रक्षक, तेरे सारे दुखों का खातमा कर देगा। सो इस तरह से, जहाँ गुरू नानक महाराज की संगत होवे, साध संगत जी! आप ही अन्दाज़ा लगाओ, कैसे अमृत की नदियाँ बहती होंगी? वहाँ ፹ करोड़ देवता, गुरू नानक की संगत में

आकर बिराजमान हो जाया करते हैं। अन्य भी कई मुक्त आत्माएं खण्डों, ब्रह्मण्डों में से, सचखण्ड से, कर्म खण्ड से, सरम खण्ड से, ज्ञान खण्ड से, धर्म खण्ड से आत्माएं, सभी गुरू की संगत की कामना करती हैं क्योंकि उनके पास यह वस्तु नहीं है। सत्संग जो है, वह यहीं पर ही है, आगे जाकर नहीं मिलता; इसके बाद तो भोग दुनियाँ है। पदार्थ बेअन्त होंगे, सुख बेअन्त होगा, पर आत्म रस वहाँ नहीं है। आत्म रस तो यदि किसी ने इकट्ठा करना है, यहीं पर ही है और कहीं भी नहीं है। सो सभी देवता उस स्थान पर बिराजमान होते थे। बिराजमान ही नहीं होते थे, बल्कि स्वंय सेवा किया करते थे। पूर्ण महापुरुषों की सेवा करने से, वहाँ तो वाहिगुरू स्वंय ही आता है –

सन्ता के कारजि आपि खलोइआ
हरि कंमु करावणि आइआ राम। पृष्ठ – 783

वाहिगुरू जी स्वंय आते हैं काम करवाने के लिये। जहाँ परमेश्वर आयेगा, सबसे महान, तो फिर वहाँ पर इन छोटे देवी देवताओं का आना तो स्वाभाविक है।

गुरू दशमेश पिता जी का दीवान सजा हुआ है, यही वचन हो रहे हैं। एक सिंघ खड़ा हो गया और प्रार्थना करते हुए कहने लगा, ''पातशाह! हम बहुत बार सुनते हैं कि देवता होते हैं, सत्संग में आते हैं।'' गुरू महाराज ने कहा, ''हाँ भाई!'' बाणी में तो ऐसा फ़रमान आता है –

कहु कबीर इह कहीऐ काहि।
साध संगति बैकुंठै आहि॥ पृष्ठ – 325

जहाँ पर साधु की संगत होती है, पूर्ण महापुरुषों की संगत होती है, वह बैकुंठ धाम होता है और वहाँ पर वाहिगुरू जी स्वंय ही आ जाते हैं। ऐसी ही एक साखी आती है।

नारदमुनि ने एक बार व्रत रखा। उसके मन में विचार आया कि मैं बैकुंठ धाम में विष्णु जी के पास जाकर जल पान करके, उसके बाद अपना व्रत तोड़ूगां। यह जो ऋषि है, इसके बारे में ऐसा बताया जाता है कि यह जहाँ भी फुरना (विचार) करे, इसके सामने कोई सफर नहीं है, जहाँ का भी अक्समात विचार किया, वहीं पहुँच जाता है।

सो नारदमुनि बैकुंठ धाम में पहुँच गये। इरादा किया था, भगवान को जाकर नमस्कार करूंगा। वहाँ जाकर देखा और पता चला कि भगवान तो वहाँ पर हैं ही नहीं। लक्ष्मी जी से पूछा कि, ''कहाँ गये हैं भगवान?'' तो लक्ष्मी जी बोली, ''बताकर नहीं गये। किसी भक्त के यहाँ गये होंगे क्योंकि उनके भक्त उन्हें सिंहासन पर टिकने ही नहीं देते। आकर्षित करते ही रहते हैं और उन्हें फिर जाना पड़ता है –

जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै॥
पृष्ठ – 403

लक्ष्मी जी ने नारदमुनि से कहा कि, ''आप तो समरथ पुरुष हो, ध्यान लगाकर देख लो।'' उस समय नारद जी ने ध्यान लगाया, पहले बड़े–बड़े मन्दिरों में देखा, भगवान वहाँ दिखाई न दिए। पहाड़ों पर देखा, ऋषियों के हृदयों में देखा, समुद्र में देखा और अनेक स्थानों पर, जहाँ तक देख सकते थे देखा। परन्तु भगवान कहीं भी नज़र न आए। उस समय प्रार्थना की, ''हे भगवान! कृपा करके आप ही मुझे बताओ कि आप कहाँ हो क्योंकि मेरी दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच रही जहाँ आप चले गये हैं?'' उस समय आवाज़ आई, ''नारद! अमुक स्थान पर साधुओं की संगत हो रही है, वहाँ पर आ जाओ।'' फुरना ही करना था, वहाँ पहुँच गये। क्या देखते हैं, भगवान सबसे पीछे बैठे हैं। आस–पास कौन बैठे हैं – गरीब जनता बैठी है पैसे वाले, अमीर नहीं बैठे। क्योंकि अमीर आदमी जो होता है, उसके अन्दर अभिमान होने के कारण, अन्दर मैल होती है, उसका मन विनम्र नहीं होता। धर्म पालन करने वाला तो कोई विरला ही है, जिस पर वाहिगुरू की कृपा हो और सत्संग में आ जाए अन्यथा पैसे वाला तो कभी सत्संग में नहीं जाया करता। यह तो गरीबों की जगह है। ईसा जी कहते हैं कि, ''आखों को यदि सुई की नोक में से गुज़ार दो तो हो सकता है किसी न किसी विधि से पार हो जाए पर जो अभिमानी पुरुष है, धनी पुरुष है यदि वह यह कहे कि वह खुदा के दर पर जा पहुँचेगा, बिल्कुल असम्भव है, वह पहुँच ही नहीं सकता।'' कहते हैं इसका जो अभिमान है, वह कम नहीं है, वह तो आकाश से भी ऊँचा है। सो इस प्रकार देखा कि गरीब आदमी बैठे हैं। नीचे बिछाने वाले टाट आदि भी सी–सी कर जोड़े हुए हैं, कोई बहुत सुन्दर वस्त्रों वाले नहीं बैठे, कोई बनावटीपन नहीं है, कोई इत्र आदि सुगन्धियों का छिड़काव नहीं हो रहा, कोई सोने का मन्दिर नहीं है, जहाँ बैठे हैं। आम सत्संग साधु कर रहे हैं, महापुरुषों के वचन सुना रहे हैं और आप बैठे हुए सुन रहे हैं और पीछे–पीछे बैठे है। नारदमुनि ने जाकर नमस्कार की और कहा, ''भगवान! आप यहाँ?'' कहते हैं, ''हाँ नारद जी! यह मेरा घर है। मुझे लोग ला–मुकाम कहते हैं, घर नहीं है परमात्मा का। कहते हैं परमात्मा का कोई पुत्र नहीं है, कोई माँ नहीं है, कोई पिता नहीं है। सारे संसार को पता नहीं है कि मेरा घर, मेरे प्यारे, मेरे सम्बन्धी, सत्संग में हुआ करते हैं।

सो महाराज कहने लगे, ''प्रेमी! इसी तरह से भाई गुरदास जी ने लिखा है। कहते हैं, ''सच्चे पातशाह! लिखा तो जरूर है पर आप समरथ हो, एक बार यदि नज़ारा भी दिखा दो तो ठीक है।'' उस समय महाराज जी ने कृपा की, दिव्य दृष्टि खोल दी –

सरब भूत आपि वरतारा।

सरब नैन आपि पेखनहारा॥ पृष्ठ – 294

इतना कहने की देर थी, सभी के दिव्य नेत्र, अनुभव खोल दिये। या देखा, जगमग–जगमग हो रही है। बहुत ही प्रसन्न हुए, सभी के सभी हैरान भी हैं कि यहाँ तो सारे देवी देवता निवास किए हुए हैं, जहाँ पर हरि की कथा होती है –

हरि की कथा होत है जहाँ, गंगा भी चल आवत तहाँ।

अठारह तीर्थो के अभिमानी देवता भी वहाँ पर आकर, जैसे बाज़ार लगते हैं, दुकान लगाकर बैठ जाते हैं कि माँगों कोई चीज़ हम से, हम दें। माँगना क्या है?

तीरथ कीए एक फल, संत मिले फल चार।
गुरू मिले फल अनेक हैं, कहित कबीर वीचार।

यदि गुरू मिल जाये तो प्राप्त फलों की कोई गिनती नहीं हुआ करती। फिर गुरू से ही माँगो, उनसे क्यों मांगते हो? सो इस तरह से सभी बड़े–बड़े महान देवता जो हैं, वे सभी आते हैं सन्तों के दर्शन करने के लिये। इसी तरह बाणी में भी फ़रमान आता है –

धारना – शिव जी खोजदे फिरदे ब्रहमगिआनी नूँ – 2, 2
ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर।
नानक ब्रहमगिआनी आप परमेसुर॥ पृष्ठ – 273

उसे वाहिगुरू के दर्शन ब्रह्मज्ञानी द्वारा हो जाते हैं अन्यथा नहीं होते, इन्हें वाहिगुरू जी के दर्शन नहीं होते क्योंकि ऐसा महाराज जी का फ़रमान है –

ऐका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु॥
पृष्ठ – 7

वाहिगुरू जी तो देख रहे हैं, इन सभी देवताओं को, पर वाहिगुरू जी इन्हें नज़र नहीं आ रहे, नज़र कहाँ आते हैं? उसके प्यारों में नज़र आते हैं क्योंकि उसके प्यारों में तथा परमेश्वर में कोई अन्तर नहीं हुआ करता। इस तरह फ़रमान है –

धारना – सांई ही वरगे ने,
विसरे ना नाम जिन्हां नूँ – 2, 2
विसरे ना नाम जिन्हां नूँ – 2, 2
सांई ही वरगे ने,..........।
जिन्हा न विसरै नामु से किनेहिआ॥ पृष्ठ – 397

प्रश्न उठता है, जिन्हें श्वांस–श्वांस नाम नहीं भूलता, हर समय परमेश्वर में अभेद अवस्था में लीन रहते हैं, वे कैसे होते हैं? महाराज फ़रमान करते हैं –

भेदु न जाणहु मूलि सांई जेहिआ॥ पृष्ठ – 397

वे तो वाहिगुरू जैसे ही हैं –

सन्त अनंतहि अंतरु नाही। पृष्ठ – 486

सन्त और वाहिगुरू में कोई अन्तर नहीं है –

आतम रस जिह जानही सो है ख़ालस देव।
प्रभ महि, मो महि, तास महि रंचक नाहन भेव॥
सरब लोह ग्रन्थ में से

जिसने आत्म रस को अनुभव कर लिया, गुरू दशमेश पिता जी कहते हैं कि मुझ में, वाहिगुरू में कोई अन्तर नहीं हुआ करता, एक रूप हो जाते हैं। यह बात बहुत ही ज्ञान की है। जिनके नेत्र खुले हुए हैं, उन्हें पता चलता है कि यह बात ठीक है।

ऐसे ही एक बार की बात है कि शिव जी महाराज और पार्वती संसार में इस धरती पर भ्रमण करते हुए एक ऐसे स्थान पर चले गये जहाँ थोड़ी सी ऊँची जगह झाड़ियाँ आदि हैं; शिव जी महाराज ने उस स्थान को नमस्कार की, सिर झुकाया। पार्वती कहने लगी, ''यहाँ तो कुछ भी नज़र नहीं आ रहा, न तो कोई मन्दिर है, न कोई महात्मा है; यहाँ पर शीश नवाँने का क्या काम?'' उसने शिव जी महाराज से पूछा, ''मुझे एक बात समझ में नहीं आई कि आपने किसे मस्तक नवाँया है?'' शिव जी बोले, ''पार्वती! यह जो ढ़ेर है, यह जो ऊँचा टीला है, किसी समय यहाँ पर एक महात्मा रहा करते थे। उस महात्मा ने अपना जीवन प्रभु में लीन होकर, एक रूप होकर, यहाँ बिताया था और उनका जो स्पर्श था वह इस धरती के कण–कण में समा गया और आज तक आत्मिक सुगन्धि दे रहा है, हज़ारों वर्षों के बाद भी।'' पार्वती बोली, ''यह क्या हुआ करता है महाराज?'' आपने कहा, ''जैसे घी वाला मटका किसी स्थान पर टूट जाये और टुकड़ियाँ को पड़े–पड़े सैकड़ों साल बीत जाने के बाद भी यदि सूर्य की गर्मी उन पर पड़ती हो, तो उन टुकड़ियों में चिकनाहट निकल कर सूरज की चमक उसमें से परावर्तित होती हुई नज़र आती है, सूरज दिखाई देता है उसमें से। इसी तरह से जो परमेश्वर का प्यार होता है, जिस स्थान पर बैठकर वह भजन करता है, उस स्थान पर पवित्रता फैल जाती है और उसकी सुगन्धि जैसे कोई इत्रादि की शीशी टूट जाये, काफी समय बीत जाये, लेकिन उस में से सुगन्धि वैसे ही आती रहती है। इसी प्रकार प्रभु प्यारों की चरण स्पर्श प्राप्त करके धरती सुहावनी रहती है, वहाँ पर बैठकर भजन करने को मन करता है क्योंकि वह महापवित्र स्थान होता है –

जिथै बैसनि साध जन सो थानु सुहंदा॥ पृष्ठ – 319

वह सुन्दर स्थान बन जाता है।

सो महाराज कहने लगे कि इस तरह भाई गुरमुख! जहाँ परमेश्वर का सत्संग होता हो वहाँ तो देवता चलकर आते हैं जहाँ गुरू नानक पातशाह स्वयं सत्संग करते हों, वहाँ क्या होगा?

क्योंकि आप निरंकार का साकार रूप थे। निरंकार परमेश्वर रूप, रंग, रेख, भेख से न्यारा है। करोड़ों शक्तियाँ हैं परमेश्वर में, अरब-खरब कहना ही गलत है, नाम लेना भी गलत है बेअन्त-बेअन्त कह दें, तो ठीक है और उनमें से जो सर्वोतम शक्ति है उसका रूप, गुरू रूप, गुरू ज्योति जिसे कहते हैं, वह परमेश्वर स्वंय ही हुआ करता है क्योंकि भेद नहीं हुआ करता-

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ
इक वसतु अनूप दिखाई॥ पृष्ठ - 442

कहते हैं जैसे समुद्र को मथा जाता है, ऐसे ही हमने इस शरीर में देखा, उपमा से रहित, इसके अन्दर एक चीज़ देखी है और उससे हमारे तो भ्रम दूर हो गये। कहते हैं क्या देखा?

गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई॥
पृष्ठ - 442

गुरू और गोबिन्द में कोई भेद नहीं, क्योंकि वह अकाल पुरुष का रूप है, वह सबसे महान हुआ करता है।

भाई भगीरथ बैठा है, नानक पातशाह के दर पर और अभी प्राचीन संस्कारों के होने के कारण देवी का ध्यान लगाया करता था। किसी साकत ने प्रभु प्रेम जगाने की बजाये, शक्ति की पूजा में लगा दिया। सो महाराज कहते हैं, ''एक वाहिगुरू की पूजा होती है और एक वाहिगुरू के बनाये हुए देवी देवताओं की पूजा हुआ करती है। ये मुक्ति नहीं दे सकते -

तू कहीअत ही आदि भवानी।
मुकति की बरीआ कहा छपानी॥ पृष्ठ - 874

नामदेव जी ने पूछा, कहने लगे, ''तुझे सभी आदि भवानी कहते हैं, जब तेरे से मुक्ति माँगते हैं, फिर तू छिप जाती है।''

कहने लगी, ''भगत जी! मेरे पास मुक्ति नहीं है, मेरे जो सेवक हैं, वे गलत हैं, मेरे पास विभूतियाँ हैं, माया है। वे माया ही माँगते हैं। मुक्ति तो मेरे से कोई माँगता ही नहीं, न ही मैं मुक्ति देने में समर्थ हूँ, न ही मैं स्वंय मुक्त हूँ क्योंकि हमारे अन्दर अनेक भ्रम हैं, भ्रम मिटते नहीं। ऐसा फ़रमान है सतगुरू का -

धारना - माइआ विच भरमदे,
सुर नर सभ देवी देवा - 2
सुर नर सभ देवी देवा - 2
माइआ विच भरमदे,..........।

सभी जितने भी देवी देवता हैं, ये सभी माया में से उत्पन्न हुए हैं -

ऐका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु॥ पृष्ठ - 7

प्रमुख देवता जो है, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जी ये माया के ही पुत्र हैं। सो ये भ्रम में पड़े हुए हैं -

भरमे सुरि नर देवी देवा।
भरमे सिध साधिक ब्रहमेवा॥ पृष्ठ - 258

भ्रम नहीं टूटता, वाहिगुरू की पहचान नहीं हो पाती -

भरमि भरमि मानुख डहकाए।
दुतर महा बिखम इह माए।। पृष्ठ - 258

इस माया से पार होना इतना कठिन है कि मनुष्य तो भ्रमित होता ही है, देवी-देवता भी इस माया के चक्कर में पड़कर भ्रमित हो जाते हैं, वे भी इससे नहीं छूट पाते। इसलिये संसार का कल्याण करने के लिये, ईश्वर रूप में होते हैं, देवता तो गुरू के द्वार पर आकर, जैसे हम सेवा करने जाते हैं, वे भी ऐसे ही सेवा करते हैं।

भगीरथ के मन में बार-बार अपने ध्येय का ध्यान आता है, देवी का बार-बार ध्यान आता है और नेत्र खोलकर देखता है कि एक अति सुन्दर महिला, आठ भुजाओं वाली और हाथ में झाड़ू है, वह झाड़ू लगा रही है।

भगीरथ ने पूछा, ''माता, तू कौन है?'' कहने लगी, ''मैं वही हूँ जिसका तू भजन करता है।''

वह बोला, ''हैं! यहाँ झाड़ू लगा रही हो?''

वह बोली, ''यह निरंकार ब्रह्म रूप है, आप परमेश्वर का स्वरूप है और हम सारी शक्तियाँ प्रभु से प्राप्त करते हैं।'' कहने लगा, ''फिर, मैं तो आपको ही मानता हूँ।''

उसने कहा, ''बेटा! तू भी इन्हें ही मान, हम भी इन्हीं से शक्ति लेते हैं। मेरे पास विभूतियाँ हैं, सिद्धियाँ हैं, पैसा है, यह तो मैं दे सकती हूँ, लेकिन जो असली चीज़ है परम पद, वहाँ तक तो हम भी नहीं पहुँचे हुए। वह तो गुरू नानक के पास है।''

इतना कहने की देर थी, पलक झपकते ही नेत्र खुल गये, कि मेरी सारी जिन्दगी ऐसे ही बीत गई, मुझे तो पता ही नहीं चला। देवी बोली, ''वह पूर्ण हैं, स्वंय निराकार साकार रूप धारण करके दरगाह में से, गुरू रूप में प्रकट हुए हैं और 'नानक' नाम रखवाया है, उनकी चरण शरण प्राप्त कर ले बेटा, यहीं से ही तुझे सभी कुछ प्राप्त होगा।''

सारी जिन्दगी की मेहनत के पश्चात यदि उसका ध्येय गलत है फिर तो बहुत हैरानी की बात है। उसी समय नानक के साथ सन्दा (जुड़ जाना) कर लिया। तन भी दे दिया, मन भी दे दिया, धन भी दे दिया, सभी कुछ दे दिया। महाराज जी फ़रमान करते हैं कि संसार में जितने भी देवी देवता हैं, ये भी जैसे हम प्रभु के गीत गाते हैं, ये भी सभी प्रभु का यश गा रहे हैं -

धारना - ईसर ब्रहमा दे समेत देवी देवते,
तेरा जस गाउण मालका -2
तेरा जस ओ गाउण मालका - 2
ईसर ब्रहमा दे समेत देवी देवते,........।

गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे।
गावहि चितुगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिख धरमु वीचारे।
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे।
गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले।।

पृष्ठ - 6

जितने भी बड़े-बड़े महान देवता हैं, वे परमात्मा की स्तुति (प्रशंसा) करते हैं। सो साध संगत जी। जब भगीरथ ने यह दृष्टान्त देखा, उसी समय गुरू का हो गया। थोड़ा बहुत नहीं हुआ, अपना आपा, तन बेच दिया, मन बेच दिया, धन दे दिया, सभी कुछ गुरू के अर्पण कर दिया। जब महाराज जी ने सत्संग की समाप्ति की तो उस समय इसने प्रार्थना की कि, ''पातशाह! मैं तो अपना जन्म तांत्रिक साधना में बिता चुका हूँ, मुझे पता नहीं था कि आत्म प्राप्ति कोई और चीज़ होती है; मैं समझता था यहीं से ही प्राप्त हो जायेगी, यहीं से ही मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा, यहीं से ही मुझे परम पद की प्राप्ति हो जायेगी। इसके लिये मैंने बहुत कठिन साधन किये, बड़े-बड़े व्रत किये। पातशाह! अब मैं दो दिन से लगातार रो रहा हूँ, न ही मैंने जल-पान किया है। इसलिये मैंने भी दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जब तक मुझे देवी जी के दर्शन नहीं होते, तब तक कुछ भी नहीं खाना पीना। क्योंकि मैंने सन्तों की संगत में से सुन लिया था कि सबसे बड़ी से बड़ी चीज़ है 'अविनाशी पद''-

अबिनासी खेम चाहहि जे नानक सदा सिमरि नाराइण॥

पृष्ठ - 714

पातशाह! मैंने कौतुक देखा, सारे कौतुक का वर्णन किया। तब उस समय कहने लगा, ''हे प्रभु! मुझ पर कृपा करो, मुझे रास्ता बताओ, किस तरह से परमेश्वर का मेल हो, कृपा करो।'' उस समय महाराज जी बोले, ''प्रेमी! देख, एक गड्डा (बैलगाड़ी) चलता है, उसके दो पहिए हैं; पक्षी उड़ते हैं उनके दो पंख हुआ करते हैं। सो दो बातें तू दिल में सबसे पहले धारण कर। एक तो यह धारण कर कि वाहिगुरू सभी जगह परिपूर्ण है, वह सभी कुछ अन्दर बाहर की बात जानता है और उसके भय में रह। दूसरी बात यह मन में बिठा ले कि वह इतना अच्छा है कि बिना मांगे संसार को देता रहता है -

देदा दे लैदे थकि पाहि।
जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥ पृष्ठ - 2

जैसे माँ बाप बच्चों को पालते हैं, वह भी ऐसे ही पालता है। हमारे शरीर की रचना उसने की है, खाने पीने का प्रबन्ध वह हमारा कर रहा है। हमने तो कुछ भी नहीं किया। धरती में से चीज़ें पैदा कर दीं, जिन्हें खाकर हम जीवित रह सकते हैं और जिन्दगी का सफर तय कर सकते हैं। फिर वह दयालु है, कृपालु है, क्षमा करने वाला है, पतितों का उद्धार करने वाला है, महा पापियों को पार लगाने वाला है। वह सभी कुछ है, वह कभी साथ नहीं छोड़ता, दुनियाँ साथ छोड़ देती है। जिनके साथ तेरा मेल है, वे सभी साथ छोड़ देते हैं। यदि कोई निभाता है तो केवल गुरू ही निभाता है। यहाँ भी जन्म में साथ रहता है और जहाँ जायेंगे वहाँ भी साथ ही रहेगा -

जह जह पेखउ तह हजूरि दूरि कतहु न जाई।
रवि रहिआ सरबत्र मै मन सदा धिआई।
ईत ऊत नही बीछुड़ै सो संगी गनीऐ।
बिनसि जाइ जो निमख महि सो अलप सुखु भनीऐ।
प्रतिपाले अपिआउ देइ कछु ऊन न होई।
सासि सासि संमालता मेरा प्रभु सोई॥ पृष्ठ - 677

वह कभी भी दूर नहीं होता और ऐसे दयालु, कृपालु पिता के साथ, तू हृदय से प्यार पैदा कर। सो जब ये दो चीज़ें हो जायेंगी, इनका जब अपने मन में शृंगार कर लेगा, उस समय परमेश्वर की कृपा दृष्टि तुझ पर पड़ जायेगी, यदि यह शृंगार नहीं करता, तो भेष चाहे जितने मर्ज़ी बना ले, कितने कर्म क्यों न कर ले क्योंकि -

इह तनु माइआ पाहिआ पिआरे लीतड़ा लबि रंगाए।
मेरै कंत न भावै चोलड़ा पिआरे किउ धन सेजै जाए॥

पृष्ठ - 677

महाराज जी आगे लिखते हैं -

इआनड़ीऐ मानड़ा काइ करेहि।
आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि।
सहु नेड़ै धन कमलीए बाहरु किआ ढूढेहि।
भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो॥

पृष्ठ - 721

भय का सुरमा नेत्रों में डाल, यह जो तू वस्त्र पहनता है सोने आदि का शृंगार करता है, अच्छे-अच्छे सुन्दर वस्त्र पहनता है, इनकी जगह तू प्रभु के प्यार का शृंगार कर। जब प्यारे का शृंगार करेगा उस समय, यही शरीर, यह जो जीव आत्मा है, यह परमेश्वर को रुच जाया करती है, पसन्द आ जाती है। सो फ़रमान है -

धारना - भै ते प्रेम दा शृंगार अंदर कर लै,
फेर उहनूँ भाअ जावेंगा - ੨, ੲ
फेर उहनूँ जी भाअ जावेंगा,....
भै ते प्रेम दा शृंगार अंदर कर लै,.......।
पेवकड़े धन खरी इआणी।। पृष्ठ - 722

जब इस संसार में हम होते हैं, महाराज कहते हैं बिल्कुल अनजान होते हैं क्योंकि वाहिगुरू जी की सार न समझी -

तिसु सह की मै सार न जाणी।
सहु मेरा एकु दूजा नही कोई।
नदरि करे मेलावा होई। पृष्ठ –357

जब यहाँ से गये, फिर पता चला, सच की पहचान का –

साहुरड़ै धन साचु पछाणिआ॥
सहजि सुभाइ आपणा पिरु जाणिआ। पृष्ठ – 357

गुरू की कृपा से ऐसी मति आई –

गुरपरसादी ऐसी मति आवै॥
तां कामणि कंतै मनि भावै॥ पृष्ठ – 357

तो यह कामिनी शरीर जो था, वाहिगुरू को रुच गया –

कहतु नानक भै भाव का करे सीगारु।
सद ही सेजै रवै भतारु॥ पृष्ठ – 357

जो शृंगार करना है, भय तथा भाओ का कर। फिर बिछौड़ा नहीं होता उसका।

महाराज कहते हैं, "देख प्यारे! वाहिगुरू जी को हाज़िर नाज़िर समझना, कभी भी नहीं कहना कि वह है नहीं। जब उसे हाजिर नाजिर समझेगा, वह करोड़ों ब्रह्मण्डों का स्वामी है और उसकी हजूरी में चला जायेगा फिर वहाँ से भय का शृंगार करना। वह निर्मल भय होता है, ऐसा भय नहीं जैसे साँप का डर होता है। प्यार भरा भय कि कभी गलत काम मेरे से न हो जाये। सो भय और प्यार का शृंगार करना और प्यार में रह, इससे तेरी नाम वाली वृति, ऊँची होती चली जायेगी।

सो इस तरह से नाम की दात दे दी। खीवा (सम्पूर्ण हो जाना) हो गया उस समय। नाम रस आ गया, तान्त्रिक मैल हट गई, गुरमत दृढ़ हो गई, नाम में मन टिक गया, मन दौड़ने से रुक गया। पहले जो रुचि थी, उसमें एकाग्रता तो आ गई थी, त्राटक में, पर रस नहीं आता था, **Frustration** निराशा, उदासीनता थी, क्रोध आता था, जो नाम का प्यार है, वह रस से भरा पड़ा है।

प्रभु प्यार के बिना भोग, रुचियाँ खत्म नहीं होतीं और भोगों की जो रुचि है, यह मनुष्य के मन को कमज़ोर कर देती हैं और जब मन और तन की शक्ति खर्च हो गई तो महाराज कहते हैं –

खसमु विसारि कीए रस भोग।
तां तनि उठि खलोए रोग॥ पृष्ठ – 1256

जब वाहिगुरू जी को हम भूल गये, भोगों में प्रवतृ हो गये; भोग आज तक किसी ने नहीं भोगा, बल्कि भोगों को आदमी ने भोगा है। शराब खत्म नहीं होती, शराब व्यक्ति को भोग जाती है, फेफड़े और हृदय को कमज़ोर कर देती है। शराब भोग लेती है इसे, इसने शराब को न भोगा। कोई भी विषय ले लो संसार का, वह मनुष्य को भोग जाता है। भरथरी हरि जी कह गये कि हैरानी की बात है, हमें ऐसा लगता है कि हम भोगों को भोग रहे हैं, स्वादिष्ट भोजन खा रहे हैं परन्तु वे भोजन हमें खा रहे हैं फ़रमान –

बहु सादहु उपजै रोग।।

महाराज कहते हैं जितने स्वादिष्ट भोजन खायेगा, वे तुझे भोग जायेंगे और फिर यह शरीर रोगी हो जायेगा। सो इस तरह से शरीर की शक्ति खत्म हो जाती है, जैसे आतिश़बाजी जलती है, इस तरह से शरीर की जो ताकत है, खत्म होती जाती है, फिर भोगों के संस्कार मन को मैला कर देते हैं, मन नाम में नहीं टिकता। मनुष्य जितने भोग भोगता है, मन की भूख कभी नहीं मिटती और अधिक बढ़ती जाती है। भोगे हुए भोग मनुष्य को कभी तृप्त नहीं करते –

धारना – बहु रंग तमासे जी – 2
अखीं देख न रज्जीआं – 2
अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे।
उसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे।
सादीं जीभ न रजीआ करि भोग बिलासे।
नक न रजा वासु लै दुरगंध सुवासे।
रजि न कोई जीविआ कूड़े भरवासे।
पीर मुरीदा पिरहड़ी सची रहरासे॥

भाई गुरदास जी, 27/9

श्री सन्त श्री ईश्ऱर सिंघ जी महाराज

गिआनी मेहर सिंघ जी

साहित्यिक रचना

सिमरण अभ्यास के साथ-साथ सन्त जी महाराज का साहित्य की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान है। वह समय-समय पर साहित्यिक रचना करने वाले लेखकों की पूरी मदद करते हैं। हाँ, जो रचना उनकी मन पसन्द की हो, उसे अधिक से अधिक लोगों के हाथों तक पहुँचाने का प्रबन्ध भी करते हैं। स्वामी हेम राम जी, पाकिस्तान, जिला मिन्टगुमरी के पास के ब्रह्मज्ञानी तथा विद्या के महान खजाने, उदासीन तथा पूर्ण वेदान्त आचार्य महात्मा हुए हैं। उनका एक ग्रन्थ, सन्त जी महाराज को बहुत ही पसन्द आया। जिस व्यक्ति से यह पुस्तक मिली, पहली बार एक सौ प्रतियाँ छपवाईं, जिसे विद्वान लोगों ने बहुत पसन्द किया। परिणाम यह निकला कि सन्त जी महाराज ने यह पुस्तक फिर दूसरी बार एक हज़ार और छपवाई और हर उस प्राणी को प्रसाद के रूप में भेंट करते हैं, जिनको उन्होंने परमार्थ की राह पर चलाना है। फिर साथ ही साथ यह भी फ़रमान करते हैं कि, भाई! इसे पढ़कर आपने केवल वेदान्ती ही नहीं बनना, हम गुरू बाबा की सिखी के पहरेदार हैं, वह उसे कभी भी सहन नहीं करते जिसके द्वारा सिखी को ठेस पहुँचती हो। एक निर्मल, साधु पर सन्त जी महाराज के परम मित्र थे। वह जब भी आते आप उनका बहुत आदर मान करते थे, सारी संगत से ऊँचे आसन सम्मान सहित अपने बराबर में बैठाया करते थे। काफी समय तक वह मिला नहीं। एक बार सन्त जी महाराज हरिद्वार एक महात्मा जी की कुटिया पर सालाना समागम पर पधारे, वहाँ पर वह विरक्त सन्त भी आये हुए थे। जब सन्त जी महाराज ने देखा कि उसने दाढ़ी कटवा ली है, तब महाराज जी ने उसे अनदेखा कर दिया और फ़रमान किया। भाई! हम तो इसका शुद्ध विचारों के कारण आदर किया करते थे पर अब यह हद से भी आगे निकल गया है। जब उसने इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली कि अब यह गुरू की बख्शी हुई दाढ़ी को बर्दाश्त नहीं करता, फिर हम इसे क्यों जबरदस्ती सम्मान दें। यह ज्ञानी बने, धन्य भाग हैं, पर यह कोरा बर्हिमुखी जीवन में सिखी से बाहर चला जाये, यह बाबा साहिब वीर सिंघ जी के दर का असूल नहीं है, जिन्होंने एक बार कछहरा उतार देने पर ही बाबा खुदा सिंघ जैसे महान सेवक और पंथ प्रसिद्ध महात्मा को भी झाड़ दिया था। ऐसी मस्ती बेकार है, जो हमारे से बाबा की सिखी ही छीन ले।

सो सन्त जी महाराज भी यह पुस्तक हर अभ्यासी, खोजी तथा विचारवान पुरुष को ही भेंट करते हैं, यह भी हिदायत करते हैं कि इस पुस्तक के उत्कृष्ट तथा उताम पक्ष देखकर उन पर विचार करो, बाकी उसके ऐसे पक्ष कम पढ़ो जो तुमसे गुरू की सिखी तथा नितनेम, आत्म चिन्तन तथा सिमरण ही छीन लें।

होती-मरदान संप्रदाय में से सन्त प्रेम सिंघ जी के सेवक सन्त मनी सिंघ जी महाराज के सेवक, मुनि अर्जुन सिंघ जी महान वेदान्त आचार्य तथा गुरबाणी के धुरन्धर विद्वान हैं। उन्होंने श्री गुरू ग्रन्थ साहिब को हिन्दी में अर्थों सहित प्रकाशित करवाया। उन्होंने हर प्रकार का कष्ट सहन करके पहली पुस्तक छपवा ली, परन्तु उसके बाद उनके पास कोई साधन न बन सका, वह दूसरी पुस्तक जिसका खर्चा हज़ारों रूपये था, प्रकाशित करवाना चाहते थे परन्तु पैसों का प्रबन्ध न हो सका। वह सभी ओर से निराश होकर सन्त जी महाराज की शरण में आए और पुस्तक की दूसरी प्रति छापने के लिये आर्थिक सहायता की मांग की। सन्त जी महाराज ने इस पुस्तक का सारा ही खर्च वहन करने की जिम्मेवारी ले ली, इसके साथ-साथ मुनि जी की रिहायश तथा अन्य इससे सम्बन्धित खर्च की जिम्मेवारी, यहाँ तक कि उनकी बीमारी के समय आवाजाई तथा हर समान उन्हें उपलभ्ध करवाये। उनकी इस हज़ार पृष्ठों की पुस्तक के आदि में ही सन्त महाराज जी की इस उदारता की कहानी सदा के लिये एक अमर याद बनी रहेगी। जब भी कोई पाठक, खोजी और सात शबद का अभ्यासी या फिर विद्वान इस पुस्तक को पढ़ेगा, उसी समय सन्त महाराज जी की उदारता की कहानी उसके सामने आ जायेगी।

1962 में सरदार प्रताप सिंघ जी कैरों डेरे में आए और जाते समय मुझे सन्त जी महाराज के पूर्वजों के बारे में पुस्तक लिखने के लिये कह गये। मैंने पहले सन्त अतर सिंघ जी महाराज तथा गुरू साहिबानों के बारे में लिखा। यह ठीक है कि वह पुस्तक और भी अच्छी लिखी जाती यदि मैं उस पर अधिक मेहनत करता। परन्तु जब मैंने उसे पूरा किया, उस समय सरदार प्रताप सिंघ इस दुनियाँ में नहीं थे, जिनसे मैं किसी प्रकार की सहायता ले पाता। सन्त जी महाराज ने 4000 रूपये खर्च करके यह अमर कथा छपवाई, फिर मज़े की बात यह है कि यह पुस्तक केवल अपने साथी सेवकों तथा नाम सिमरण के जिज्ञासुओं को मुक्त ही बांटी और बड़े-बड़े अमीर लोगों के कहने पर भी इसका मूल्य लेने से इन्कार कर दिया। केवल एक ही मूल्य चाहते हैं कि कोई उस पुस्तक को पढ़े, फिर इससे सत, सन्तोष, दया, धर्म,

सत मार्ग जो महापुरुषों ने महान साधना द्वारा धारण किया हुआ था, उससे कोई छोटा-मोटा गुण ग्रहण करे या फिर कम से कम अपने अन्दर ही झांक कर देखे कि आत्मदर्शी लोगों के रास्ते से मैं कितनी दूर हूँ और उस परम पद की प्राप्ति जिन महान पुरुषों ने की है उन्होंने कितने कष्ट उठाए हैं?

अमर कथा के प्रकाशित होने की देर थी सन्त जी महाराज को साहित्य प्रेमियों ने आ घेरा। सरदार नाहर सिंघ जी एम.ए. जो किसी समय पटियाला में सन्त जी महाराज के समकाली रहे थे, अमर कथा पढ़कर मेरी बहुत अधिक प्रशंसा की और साथ ही मुझे लिखा कि तुम्हारी पुस्तक ने ऐतिहासिक दृष्टि में भी एक नया मोड़ पैदा कर दिया है। उन्होंने इस सम्प्रदाय के प्रमुख महात्मा सन्त बाबा महाराज सिंघ जी के बारे में अंग्रेज़ों की खुफिया फाइलों में कोई अढ़ाई सौ पृष्ठों का साहित्यिक मसाला टाईप करवा कर रखा हुआ था। यह भारत के लिये एक नया मोड़ देने वाला मसाला था। इससे पहले आहलुवालिया, साहिब ने एक पुस्तक "स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारभिक घोलाटिये" में बाबा महाराज सिंघ जी के बारे में लिखा था, सरदार नाहर सिंघ जी ने लिखा था कि थोड़ा सा धन खर्च करके यह साहित्यिक सामग्री पंजाबियों के गौरव हित महान कार्य कर सकती है। मैंने यह बात सन्त जी महाराज से की। उन्होंने नाहर सिंघ जी को बुलाकर सारा खर्च वहन करने की जिम्मेवारी ली, फिर यह पुस्तक बारह हज़ार रूपयों की लागत से प्रकाशित करवा दी तथा इस पुस्तक के रचयिता को इसके बेचने खरीदने का अधिकार भी दे दिया। इससे अधिक उदारता का संसार में कोई उदाहरण नहीं मिलता और आपने पुस्तक के क्रिय-विक्रय आदि से अपना कोई वासता न रखा।

अब बाबा कर्म सिंघ जी होती मरदान तथा सन्त अतर सिंघ जी महाराज रेरू साहिब, सन्त जी महाराज के बारे में एक पुस्तक ज्ञानी मोहन सिंघ जी प्रकाशित करवा रहे हैं, जिसका खर्च भी सन्त जी महाराज ही बर्दाश्त करेंगे।

यह पुस्तक 'नौ रतन' के ब्लाक तथा लिखते समय की सुविधाएं भी सन्त जी महाराज ने ही उपलब्ध करवाई तथा एक प्रेरणा दी है। इन सभी बातों से उनकी साहित्यिक रूचियों तथा साहित्यिक सेवाओं के लिये मन में उत्साह का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वाहिगुरू मंत्र की प्रतियाँ, हर समय मुक्त सन्त जी से प्राप्त होती हैं। फिर आने वाले समय में जब भी कोई खोजी तथा साहित्यकार इनके बारे में लिखेगा, सन्त जी महाराज के इस त्याग के कारण यह पुस्तक उसके नेत्रों के सामने अवश्य होगी। सन्तों के लिये खोज के साथ ही सन्त मार्ग के खोजियों का इतिहास लोगों के लिये अति आवश्यक है। जिसकी सामग्री इकट्ठी करने की ओर सन्त जी महाराज का पूरा ध्यान है।

हरि कीर्तन का प्रवाह

हरि कीर्तन सन्त ईश्र सिंघ जी महाराज को बख्शीश के रूप में विरासत में ही मिला हुआ है। सन्त अतर सिंघ जी महाराज ने बाजे पर हाथ स्वंय ही रखवाया था और वर के रूप में फ़रमान किया था, "भाई! संगतें आया करेंगी, लोगों की रूचि तेरे से सुनने की हुआ करेगी। तेरे कीर्तन में इतनी संगत आया करेगी जिसके बारे में आज सोचा भी नहीं जा सकता। फिर कोई पुस्तकें पढ़ कर इतिहास की पड़ताल कर लिया करो, गुरू ग्रन्थ साहिब की विचार किया करो, मन को समझाने के लिये ही कुछ न कुछ ज्ञान पढ़ ही लेना चाहिए। पर जब मन ही हर समय हरि कीर्तन में रहे तो भी उसे समय निकाल कर पढ़ना ही पड़ता है ताकि इस शरीर ने जो भी सता धारण की हुई है, इसे निभाना भी तो धर्म है, एक बार सन्त ईश्र सिंघ जी ने कीर्तन करते हुए वैराग में आकर शबद पढ़ा -

जिस पिआरे सिउ नेहुं
तिस आगै ही मर चलीऐ
ध्रिग जीवन संरा तां कै पाछै जीवणा।

इस दिन रात के समय गोखे की छपरी में जाकर परम कृपालु महापुरुष ने सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "बीबा! अभी से ही घबरा गया है। हमने तो तेरे से महान सेवा करवानी है। हजारों लोगों ने तेरे ज्ञान के उपदेश सुनने हैं। लाखों ही प्राणी तेरे कीर्तन से मन की शान्ति प्राप्त करेंगे। लाखों ही गुनाहागार तेरी एक कृपा भरी दृष्टि को ढूँढते रहा करेगें। हाँ भाई! तू साध है, तेरे मन की भावना तथा तेरे मन की सदा हर समय ही प्रभु स्वंय सुनता है। सो तू निश्चिंत होकर रह। यह करनी है और तेरा सारा ही बोझ हमने अपने ऊपर ले लिया है। लोग समझते हैं कि तेरा कोमल शरीर, ये खद्दर के छह कलियों वाला कुर्ता और धौड़ी की जूती से रगड़ खाकर कुरूप हो गया है। सच यह है कि रगड़ और सख्ती ही आगे की साधना तथा सुखमय जीवन का आधार है।

सन्त जी महाराज के ज्योति जोत समाने के उपरान्त ढक्की में निवास करते समय, पहले चिमटे से ही खड़े होकर कीर्तन करते थे पर फिर बड़े बाबा जी की आज्ञा के कारण ही बाजे की सुरों पर हाथ चलाने लगे और वही हाथ आज तक टिका आ रहा है। न ही कोई साज और न ही कोई नया सुर है बस एक लिव है। एक तार है जो खटकती है और लोग कान्हा की मुरली की ओर मस्त होकर लाखों की गिनती में खिचे हुए चले आते हैं। हर साल के आरम्भ में ही कीर्तन तथा दीवानों में समय मांगने के लिये पंक्तियाँ लगाकर आ खड़े होते हैं। जो लोग दस दिन की मांग करते हैं, उनके हिस्से में चार या पाँच दिन ही बड़ी मुश्किल

से आते हैं। हर जगह दीवानों की हाज़िरी रोज़ पहले की अपेक्षा अधिक होती है। एक कार्यक्रम अभी समाप्त ही नहीं हो पाता कि दूसरे महीने का पहले ही पूर्ण हो जाता है। सन्त जी महाराज का शरीर अब अवस्था के अनुसार काफी कमज़ोर हो गया है। बेशक सेवक तथा डाटर जो कि महाराज जी के औरों की तरह ही सेवक हैं, अपने हाथों से पवित्र सेवा करना अपना धर्म ही मानते हैं। डाक्टर माधो राम साफट जो कि कलकता का मशहूर लोक सेवक तथा धार्मिक प्राणियों में पूज्य, हाथ धोकर तौलिए से साफ करके, फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करता था, ''महाराज! यदि आज्ञा हो तो ये हाथ पवित्र कर लूँ। फिर वह पूर्ण आदर के साथ ही उनके सारे शारीरिक अंगों को बड़े गौर के साथ देखता था। नज आदि बड़ी गौर से देखता था। हम वास्तविक्ता की ओर चलें कि सन्त महाराज जी रोज़ाना ही हज़ारों लोगों को पहले कुर्सी के समय निर्मल, उच्च तथा गुप्त ज्ञान तथा हर प्रकार के संशय निवृता करने हेतु, हर ज्ञान के विचार बताते हैं। पर खुले दीवान में सादा तथा आम लोगों की समझ में आ जाने वाली बातों द्वारा भक्ति, वेदान्त लंगर की सेवा, सतगुरू की सेवा, कीर्तन महिमा, सन्तों की संगत करके मन आदि का उद्धार, सतगुरू की आवश्यकता, निगुरे का नाम बुरा आदि विषयों पर विचार करते हैं। पिछले चालीस पैतांलीस साल से यह ज्ञान भण्डार, यह कीर्तन की झन्कारें बजती आ रही हैं। फिर इतना ही नहीं कि केवल अनपढ़ या फिर देहाती ही इस सीधे सादे कीर्तन का लाभ उठाते हैं बल्कि आप जी के विचारों की एक खूबी है, वह अनपढ़ लोगों के लिए सीधी सीधी, परन्तु समझदारों के लिए खोज तथा उतमा का महान भण्डार है। सन्त जी महाराज के विचार मानों एक प्रकार से दर्पण हैं जो जिस प्रकार का भी मुँह बनाकर जिस भी भावना से सुनता है, उसमें से उसे वही बात और गुण प्राप्त हो जाता है।

वे सीधी तथा आम समझ में आ जाने वाली बातों द्वारा बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी मात कर देने वाली बातें बता जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि ज्ञानी ने वे बातें कहीं से सुनी होती हैं या फिर पढ़ ली होती हैं, पर महापुरुषों ने वे ज्ञान की मंजिलें तथा गुप्त भेद अपनी कठिन साधना तथा तप द्वारा प्राप्त किये होते हैं। यह उसी प्रकार का भेद है जैसे एक वैज्ञानिक खोज करके नया अनुसन्धान या खोज निकालता है पर एक पहले से ही निकली हुई खोज की व्यातया करता है। उसके बारे में अपनी राय नहीं रखता। मुख ज्ञानी की अपनी राय नहीं होती। पेशेवर रागी में सत्य कहने की शक्ति नहीं होती। यही अन्तर होता है सन्तों के कीर्तन तथा पेशेवर कीर्तन करने वालों में। वे आत्म शुद्धि के हित अपने निजी अनुभव वर्णन करते हैं। जैसा कि गुरूदेव ने फरमाया, सन्तों की सुच्ची (पवित्र) साखी सुनो क्योंकि वे वही कहते हैं जो उन्होंने आँखों से देखा है।

इस उतम उपदेश से जहाँ लाखों व्यक्ति हरि कीर्तन से प्रभावित होकर सिखी के साथ जुड़े हैं, वहाँ पर हजारों ऐसे भी हैं, जिन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान होते हुए भी प्रभु भक्ति, अल्लाह से प्यार तथा अन्दर से हक की प्रप्ति की राह ढूँढी है। आम मनुष्य के लिये तो दर्शन इसलिये ही दुर्लभ हैं क्योंकि महाराज जी ने वक्त को इस तरह बान्ध दिया है कि एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने देते। वह सुबह ही दस बजे कुर्सी पर बिराज कर ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ खुली बातें करते हैं, सुनते हैं कुर्सी और किसी काम के लिये नहीं है। वह मानों एक खुला दरबार है जहाँ प्रत्येक अपनी अर्ज़ भी कर सकता है और मन की गुहज़ (गुप्त) के बारे में भेद भी पूछ सकता है।

हरि कीर्तन कहने के लिये, हरि कीर्तन है और सुनने के लिये सतपुरुषों के वचन ही हैं, पर हर एक व्यक्ति के लिए कल्याणकारी भी हैं तथा जीव को सुखमयी, सात्विक जीवन व्यतीत करने का अमोलक राह भी बताता है।

जब महापुरुष तीन हिस्सों में कीर्तन करते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य बाहरी सुरत को भूल कर सत-स्वरूप में वास कर गया हो। लोक वृतियाँ, लोक भावनाएं जब संगत में एक हो जाती हैं तो वहाँ पर प्रभु स्वंय ही आकर निवास करते हैं। यही बात सतगुरों ने कही है कि संगत में जब वे हरि कीर्तन की सुरों के साथ सुरत जोड़कर लिव अन्दर टिकती है -

विच संगत हर प्रभ वसे जीओ

और कहीं का तो हमें पता नहीं पर मैंने एक बात देखी है कि हरि मन्दिर साहिब के अन्दर जो हरि कीर्तन की उतम लहरें उठती हैं वे और कहीं भी सुनी नहीं जा सकतीं, इसी तरह से हरि कीर्तन का जो आनन्द इस दरबार में आता है, उसकी महिमा भी कही नहीं जा सकती। बड़े-बड़े नास्तिक तथा नीच मनुष्य, कीर्तन सुनने के उपरान्त सीधे ही नहीं हुए बल्कि ऐसे सुधरे कि उनके द्वारा अन्य कई लोगों के जीवन सुधर गये हैं। वे कोई गूढ़ राग नहीं गाते। सीधी सादी धारनाएं और सीधी सादी बातों द्वारा जीवन मनोरथ का सिद्धान्त बताते हैं। मेरी अपनी यह दशा है कि मनोवृति यदि कहीं भी काबू नहीं आती, वह साध संगत में यहाँ आकर अपने आप ही टिकाने की ओर चल पड़ती है। इसके अन्दर मेरी श्रद्धा को भी स्थान मिल सकता है। पर कोरी श्रद्धा ही नहीं सत्य तो यह है कि हर एक वक्ता का अपना जीवन लक्ष्य, सिद्धान्त और उस बात पर निश्चय होता है जो वह लोगों को बता रहा है। वे स्वंय हरि कीर्तन करते हुए जब अनहद शब्द की व्याया करते हैं तब वे मुख ज्ञानियों की तरह नहीं, बल्कि त्रिकुटी के मुकाम पर सहंसरारदल कमल से आगे कुण्डलनी के झरने,

उसके अन्दर से शब्द की धुन स्वंय ही पहले सुनते हैं, फिर वही बात, वे अन्य लोगों का व्खायान करते हैं। 'गुरमुख रोम-रोम हरि धिआवै' का कथन, हर एक ज्ञानी करता है पर जब महापुरुष इसका वर्णन करते हैं तो प्रत्येक ध्यान लगाने वाले का ध्यान तुरन्त ही त्रिकुटी की ओर चला जाता है और वहीं से ही सुरत का शबद साथ जुड़कर, उसी समय अन्तरीव हो रही आवाज़ फर्राटे मारती हुई, हर एक रोम-रोम में से, एक ही समय शान्त, अकह तथा अज़ब शक्ति सहित रोम-रोम में अपनी मस्ती भरी तरंग बाहर को छोड़ेगी फिर वह फुहार तथा आवाज़ हर तरफ से एक धुन सुनायेगी। बताओ यह हरि कीर्तन यह अनन्त कथा यह रंग अन्य कहाँ से प्राप्त हो सकता है ? यही कारण है कि लोग इस हरि कीर्तन की प्रतीक्षा दीवानों में मीलों का सफर तय करके, लम्बा सफर चल कर, कष्ट उठाकर, खूब तेज़ वर्षा तथा आन्धियों के अन्दर भी इस कीर्तन का आनन्द लूटते हैं। यह प्रवाह जारी है। वाहिगुरू जी की कृपा से काफी लम्बे समय तक चलता रहेगा।

क्योंकि यह सन्तों का गुरबाणी कीर्तन जिसमें लोगों से कोई मांग नहीं करनी, कोई आशा नहीं रखनी, सन्तों के कीर्तन करनी तथा कथनी से एक ही बात प्रकट हो सकती है कि वह सत-सन्तोष, दया, धर्म लोगों को कहाँ तक दृढ़ करवाता है। मुख ज्ञानी तथा पेशेवर रागी का उद्देश्य ही वास्तव में लोक दिखावा होता है या फिर पहले से ही भाड़े पर आये होते हैं वे कभी भी सच, धर्म, सच करनी, सच रहत के बारे में सच्चा और ऊँचा पवित्र उपदेश कर ही नहीं सकते। फिर वे डरते भी हैं कि किसी बात से घर वाले नाराज़ ही न हो जाएं और इस तरह से मिलने वाली पूजा प्रतिष्ठा ही न मारी जाये। मैंने एक रागी को यह कहते हुए सुना, ''पातशाहों! यदि लोगों को मांस शराब खाने पीने से रोकें, फिर गन्दे गीत सुनने से रोके तो हमें क्या लाभ? हम तो स्वंय ही उन गीतों के वशीभूत होकर उन्हीं सुरों पर परमात्मा के गीत गाते हैं वास्तविकता यह है कि हमारे सामने उसी गाने की आवाज़ उसी गायिका या फिर गायन करने वाला होता है। फिर हम तो परमात्मा से भी अधिक उन गाने वालों के पुजारी हैं, जिनकी बरकत से हमारे पास यह पोस्त (जर्दा) मसाला पहुँचता है और हम उसके द्वारा लोक प्रचार करके उपजीविका कमाते हैं।''

सन्त जी महाराज का कीर्तन, ''हम लोगों को शोध कर दृढ़ करायें कि यह रास्ता है जो हमने अपनाया है, जिसका दिल चाहे, तुम भी उस परमपद की प्राप्ति कर सकोगे यदि गुरू उपदेश के बल द्वारा हमने प्राप्त की है। सन्त वचन जो सुने, पालन करे वह सतगुरू की कृपा के कारण भवजल से पार करा देता है इस दुनियाँ को भी सुखी तथा महान बनाने का यत्न करता है।''

यह सप्रदाय जो साहिब भाई दया सिंघ जी ने नाम बाणी के महान उतम प्रवाह हित सतगुरू दशम पिता जी की भी बख्शी हुई अमोलक दात, निज रूप में जाना, फिर सारी दुनियाँ को उसी के (परमात्मा) रूप में देखना और उनके दुख दूर करने के लिये प्रयत्न करना, और कुछ न बन सके तो उसके लिए मन में, रोज प्रार्थना करने के लिये चलाई थी जो आज तक बराबर कलगीधर महाराज की आत्म ज्योति को प्रदीप्त कर रही है, यह ज्योति कभी भी मद्धम नहीं हो सकती।

हरि कीर्तन सुनाओ

पटियाला की धरती को यह मान प्राप्त है कि वहाँ कई प्रतापी महापुरुष अपना तप, तेज़ तथा करनी प्रकट करते रहे हैं। अब भी हम एक पावन पुरुष, महान तपी, सन्त बाबा नन्द सिंघ जी के पास बाबा जस्सा सिंघ जी के बारे में अर्ज़ करने लगे हैं। वह शबद के महान उपासक थे। वह लगभग जीवन में -` वर्ष तक कभी भी किसी मकान के अन्दर नहीं सोये। पहले रेतीले मैदान में सोया करते थे। बाद में जब संगतों का प्यार बढ़ गया तब सफेद जीन की बड़ी छतरी ही आपके सिर पर हुआ करती थी। वह हर समय एकान्त में ही किसी वृक्ष की जीरांद के साथ याराना रखते थे। सफेद कपड़े, सफेद रंग, सफेद बढ़िया प्यारी दाढ़ी, प्रकाशमान चमकता हुआ चेहरा, हर एक को अपनी ओर खींचता था। वह सारा जीवन ही पटियाला में रहे। साल में एक बार दान सिंघ वाले अपने डेरे में जाया करते थे। फिर हो सका तो बाहर यात्रा कर ली अन्यथा नहीं। निज घर में ही आनन्द लूटते थे। प्रतिदिन सुबह अमृत बेला में उठकर ख्भ बार जपुजी साहिब के पाठ करने के बाद नितनेम पूरा करना उसके उपरान्त जल पान किया करते थे। वह न तो किसी साधु के पास बैठते न ही किसी को अपने पास बिठाया करते थे। इतनी संकीर्ण वृति के मालिक थे कि किसी के साथ लगाव हो जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। फिर न ही वह किसी से सम्बन्ध रखते थे और न ही किसी की परवाह करते थे। परन्तु सारा जीवन तीन परम महापुरुषों के कीर्तन ने उनकी आत्मा तथा मन को प्रभावित किया। सो उनका हल अपनी जुबानी ही बताएंगे। अब सन्त ईश्र सिंघ जी के डेरे के बारे में उन्होंने भाई वरियाम सिंघ जी धमोट वालों से सुना कि वे दबलान हैं। तब बहुत प्रसन्न हुए और वरियाम सिंघ जी को कहा कि वह महान तथा उतम जीवन, महान कलाधारी, सन्त जी महाराज का कीर्तन या फिर शबद सुनना चाहते हैं। परन्तु शरीर कमज़ोर होने के कारण हाज़िर होना मुश्किल है। फिर जब सन्त महाराज जी ने बाबा जी की इच्छा के बारे में बताया तो तुरन्त ही अपनी कार भाई वरियाम सिंघ जी धमोट वालों को देकर महापुरुषों को लेने के लिए भेजा। उस समय सन्त बाबा

नन्द सिंघ जी की आयु क वर्ष से ऊपर हो चुकी थी।

जब बाबा जी पहुँचे सन्त जी ने कार में से उतर कर नमस्कार की। बाहर गुफा में तो गये, परन्तु उनकी इच्छा के फलस्वरूप इनका बिस्तरा, वृक्ष के नीचे बिछवा दिया। ऊपर एक चन्दोआ और नीचे चादर बिछा दी जो कि एक प्रकार से तम्बू दिखाई देता था। उस समय आडम्बर अभी दबलान में नहीं थे, चार पाँच कमरे थे जो जत्थे में आने जाने वालों के लिये रिहायश का काम करते थे। बाबा जी गुफा की सीमा में ही रहते थे। जहाँ बाहर से आये, बहुत कम लोग अन्दर जा सकते थे। उस रात को दसवीं का दीवान था। सन्त जी महाराज ने तीन घंटे कीर्तन किया। बाबा जी गुरू ग्रन्थ साहिब जी की ताबिया में बिराजमान थे। हरि कीर्तन की मस्ती तथा रंगत इतनी गहरी और रस पूर्ण थी कि बाबा जी शरीर से कहीं दूर महान अर्शों में पहुँच गये। उस मस्ती में झूमते हुए, झरनाहट से कई बार काँपते दिखाई देते थे। कभी तो ऐसा प्रतीत होता था कि अभी गिर जायेंगे। इसी प्रकार रंग में मस्त, रसमय हुए तीन घंटे पता नहीं कब बीत गये? सन्त जी महाराज ने गुरू सतोतर पढ़ा, तब ही बाबा जी की सुरत महान अर्शी मण्डलों से फिर शरीर में लौटी। वह रंग में रंगे हुए, हर कदम पर वाह-वाह करते हुए ही डेरे पर पहुँचे थे।

दूसरे दिन सुबह फ़रमान किया गया मेरा शबद सुनने का यह तीसरा अवसर है। पहला शबद हमने साहिब बाबा राम सिंघ जी नामधारी से सुना था। उनके महान सेवक काहन सिंघ जी निहंग थे, वे उनकी बख्शीश के कारण शबद गाते और सुनाया करते थे। स्वंय भी नाचते थे तथा अन्य लोग भी नृत्य करने लग जाया करते थे। बाबा राम सिंघ जी के कीर्तन तथा वचनों में अमोघ बाण जैसी शक्ति थी। उन्होंने जिसे कानों में भी गुरू मन्त्र दिया वह दीवाना हो गया। बाबा काहन सिंघ जी पटियाले से बदर किये गये। पर बाबा राम सिंघ जी के नाद तथा अमृत शबद अभी भी कानों में गूँजते हैं, पर वह अग्रेज़ ने परदेसी बना दिये, पंजाब उस अमृत के शबद से सूना ही हो गया।

समय बीतता गया। फिर उसी शबद की गूँज तथा वही दृढ़ता सहित सिंह नाद मालवे की महान धरती पर मस्तुआणे में गूँजा। मालवे की धरती हरी भरी हो उठी। हर तरफ शबद के हृदय में बिन्धे हुए तथा धरती हरियावल हो उठी। जब वे शबद की महान लय उठाते थे तो उनके होठों के साथ ही मन भी अर्शों को स्पर्श करता था। पर काफी लम्बा समय शबद की लहर चलाकर, तपते हुये तथा अशान्त हृदयों को ठण्डक देते हुए, सन्त अतर सिंघ जी भी अकाल पुरुष के पास पहुँच गये, पर यह शरीर अभी भी चल रहा है। अब हमने वही शबद, वही नाद, वही धन, वही मस्ती, वही लहर फिर उठ रही देखी है और सन्त ईशर सिंघ, उन्हीं की ही रीत, महानता, आत्म बल, क्रिया तथा समानता को बलवान बना रहे हैं। वह शबद नहीं गाते, ये शबद के ही रूप हो जाते हैं। जब शबद उच्चारण करते हैं, इन मन्जिलों से उठाकर महान अर्शों पर उड़ानें भरते हैं, फिर कीर्तन से कीर्तन का रसिया, उसी रंग में रंगा हुआ, इन्हीं अर्शों पर रंग जमाता है। सो यही कारण है कि शरीर कभी-कभी इतना हल्का और सूक्ष्म हो जाता है कि रंग में रंगा हुआ, इसे अपनी होश और सम्भाल भी भूल जाती है ये शबद अब यहाँ पर ही नहीं, भारत भूमि से अफ्रीका तथा फिर विदेशों की कल्लर बस्तियों के भी भाग्य जगा रहे हैं। हमारी इच्छा है कि यह नाद इतना प्रबल हो कि सारा संसार ही दीवाना होकर नाच उठे फिर शबद ही रह जाये।

एक कठिन परीक्षा

हम पहले बता चुके हैं कि बाबा नन्द सिंघ जी पटियाला में कैसे कीर्तन के समय सन्त जी महाराज से प्रभावित हुये थे? दो दिन बीत गये थे, डेरे का हर एक प्राणी हर समय बाबा जी की खुशी तथा उनसे प्रशंसा प्राप्त करने की कोशिश करता था। क्योंकि उनकी वचन सिद्धि के बाद हावी होने के बारे में सन्त जी महाराज सभी को बता चुके थे। डेरे तथा सेवकों द्वारा हुई सेवा से भी बाबा जी बहुत प्रसन्न थे।

तीसरे दिन श्री आसा जी की वार की समाप्ति पर अरदास हो चुकी थी। संगतें सुबह की नमकीन रोटियां तथा लस्सी, चाय आदि के लिये लंगर की ओर चल पड़ी थी। उसी समय अचानक ही बाबा नन्द सिंघ जी चारपाई से उठकर सन्त जी महाराज के कोठे की तरफ आए। सन्त जी महाराज ऊपरी मन्ज़िल पर बैठे थे। दो चार और सत्संगी भी वार्तालाप में लगे हुए थे। बाबा नन्द सिंघ जी महाराज को अन्दर आता देखकर सन्त जी महाराज हैरान हो गये, पर वह पूर्ण सत्कार के रूप में बुजुर्गों के मान के लिए, उठकर खड़े हो गये और चरणों की ओर हाथ बढ़ाया। बाबा जी ने वहीं पर ही रोक कर अंक में भर लिया। फिर सन्त महाराज जी के कहने पर पलंग पर आरूढ़ हो गये।

सन्त ईशर सिंघ जी महाराज ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि मेरे से कोई गलती हुई हो तो क्षमा माँगता हूँ, मुझे स्वंय आप हजूर की शरण में पहुँच कर सेवा पूछनी चाहिये थी, पर आज जब आप ही आ गये हो तो मुझे कोई सेवा का अवसर दें।

बाबा जी ने कहा, ''हमने सारी आयु वृक्षों के नीचे सोते हुये जीवन बिता दिया है। पर अब वह कठोर और गाखड़ी कमाई मुश्किल ही दिखाई देती है। तेरे स्थान पर हमें आत्मिक शान्ति मिली है। फिर ऐसा एकान्त स्थान और हमें कहीं मिलेगा नहीं। सो यदि ठीक समझो तो यह स्थान हमें दे दो। ताकि जो अब यह वृद्ध अवस्था और शेष दिन है इसी तेरे ही डेरे में रहकर व्यतीत

करें। हमने जीवन भर कभी भी मकान में रहने का संकल्प नहीं किया। पर पता नहीं क्यों अब हमारी आत्मा सन्तुष्ट है कि हमें एकान्त तथा रमणीक भूमि पर सहज ही आत्म आनन्द की प्राप्ति होती रहेगी। साथ ही साथ शहरी झन्झट भी दूर हो जायेगें। शहरी लोग वासनाओं की गठड़ी, हर समय साथ लिये फिरते हैं फिर चलते-चलते अपना बोझ सन्तों के कन्धे पर ही रख देते हैं। सो अब उनसे बचने का भी अच्छा साधन है। यदि कष्ट न समझें तो यह सारा स्थान हमें दे दो और हम कुछ नहीं माँगते।''

मशहूर है कि सौ फकीर एक ही गोदड़ी में समा जाते हैं पर दो बादशाह एक देश में नहीं समा सकते। हम देखते हैं कि ऐसे दौर में एक साथ किसी और की महिमा तथा बड़प्पन बर्दाश्त कर सकते। पर हमारी महान आत्मा के कौतुक ही दुनियाँ से निराले थे। आप जी एक मिनट चुप रहे, फिर बाहर आये और बाबू रला सिंघ जी को बुला कर कहा, ''देखो बाबू जी! जो सज्जन यहाँ रहेंगे, वे बाबा जी की आज्ञा में ही रहेंगे पर जो जाना चाहें वे केवल कच्छा तौलिया और तन पर डाले हुए वस्त्र ही साथ लेकर जायेंगे और कोई भी सामान यहाँ से बाहर नहीं जा सकता। यह स्थान अभी से ही सन्त बाबा नन्द सिंघ जी का है।'' फिर अन्दर जाकर विनम्रता सहित प्रार्थना की, ''महाराज! इस समय कोई बहुत अधिक माया हाज़िर नहीं है पर जो भी ग्यारह हज़ार के लगभग है, वही भेंट करते हैं। लंगर के लिये सालों की सामग्री पड़ी है। लांगरी तथा बाकी सेवक आपके हुम्मानुसार ही रहेंगे या फिर किनारा करेंगे। हमारी सेवा हर समय ही हाज़िर समझो, जो भी हुम्म करोगे वह पूर्ण होगा।''

''आप हर प्रकार से बड़े हो। उम्र, महानता, साधना, त्याग, तप तथा साधनों में आप तक कोई नहीं पहुँच सकता जिन्होंने ख वर्ष की आयु से क वर्ष तक भाव त्त वर्ष तक मार्कण्डे की पुल की तरह एक छतरी के नीचे बिता दिये हैं। धन्य भाग्य हैं हमारे जो आज आप जैसे पावन परम पुरुष की सेवा के लिये यह स्थान सकार्थ होने लगा है। धन्य भाग्य जो बाबा नन्द सिंघ जी यह तुच्छ तथा मामूली सी सेवा इस सेवक से लेनी मन्जूर कर रहे हैं। मेरे गुरूदेव स्वंय ही रूप धारण करके पहुँचे हैं।'' बाबा नन्द सिंघ जी ने चुप चाप सारी बात सुनी और खिल खिलाकर हंस पड़े।

''वाह भाई! ईशर सिंघ! तूने अब अपना जाल हमारे गले में डालने की सोची है। ये लोग जो तेरे पास आकर सीधी बातों द्वारा महान ज्ञान तथा आत्म ज्ञान प्राप्त करते हैं, ये हमारे वश से बाहर हो जायेंगे।''

''हमारी उम्र वाहिगुरू ने कृपा करके वृक्षों तथा छतरियों से पार करा देनी है। जो कुछ दिन बाकी हैं वह भी बीत जायेंगे। फिर इस कल्लर धरती को गुलजार करने का जो भार करतार ने तेरे जिम्मे लगाया है वह और किसी से पूरा उतारा भी नहीं जा सकेगा। लोग सौ गोगे उड़ाते थे। रूपये पैसे तथा आडम्बर की कहानियाँ करते सुनते थे। हमें शंका हो गई। हमने बातों से नहीं, कर्म की कसौटी पर परख कर ही इस सोने को ख्ळ कैरट का सोना कह सकते हैं और कह रहे हैं। जा! तेरी चार चक जागीर है, तेरा रास्ता रोकने वाले स्वंय ही रुक जायेंगे। पहले ही भाई अतर सिंघ तथा सन्त अतर सिंघ मस्तुआणे वालों ने वरदान दिये हुए हैं। अब इस गरीब साध के पास जो कुछ है, वह भी तेरा है।''

अफ्रीका भ्रमण

पंजाबी का एक गुण मशहूर है कि वह कभी भी कठिनाईयों से घबरा कर पीछे नहीं भागता बल्कि हर कठिनाई को सीधे मुँह प्रवाह करके सफलता का झण्डा गाढ़ता है। यही कारण है कि अति विकट स्थान पर गोराशाही ने सदा ही पंजाबियों को भेजा था। जिस प्रकार बर्मा के जंगल, सिगांपुर, मलाया आदि स्थानों की पहरेदारी तथा अफ्रीका के घने जंगलों को जीवन देने हित, केवल पंजाबी ही काम आए थे। बेशक यह भी ठीक है कि बाद में जब धरतियाँ, आबाद हो सर-सज तथा फल देने लायक हो जायें, तो इन सुजान, मेहनती तथा जयाकश किरतियों का अस्तित्व ही कई लोगों की आँखों में रिड़कने लग जाता है। यही बात अफ्रीका में भी हुई, पर जब महाराज पहली बार गये तो बात कुछ और थी। आप जी ने सरदार सौदागर सिंघ तथा अन्य नैरोबी निवासी सज्जनों ने भेखी तथा माया के मारे साधुओं से तंग आ चुके लोगों की व्यथा सुनाई। कई सज्जन जो लुधियाना आदि के वासी थे बनावटी साधु तथा भेखी और धन बटोरने वाले रागियों से काफी दुखी थे। सो संगत की यह प्रार्थना मानकर कि सन्त नाम की महानता तथा सिखी घर की महानता को प्रकट करने हेतु, सन्त महाराज ने अफ्रीका जाना प्रवान कर लिया था।

सो जनवरी 1951 को आप बम्बई से समुद्री जहाज द्वारा रवाना हो गये। मज़े की बात यह है कि इस लम्बे सफर के समय ही पौह सुदी सप्तमी का महान गुरूपूर्न रास्ते में ही आया था। संगत काफी थी। पाठी सन्त महाराज जी के प्रेमी थे। सो पाठ हुआ, प्रसाद बांटा गया तथा गुरू का लंगर तैयार किया गया था। उस दौरे के समय सन्त महाराज जी के साथ बाबू रला सिंघ जी, श्री मान भाई हरभजन सिंघ, भाई बचन सिंघ जगौड़ा, भाई लिवतार सिंघ जी, भाई भाग सिंघ जी, जत्थेदार महेन्द्र सिंघ जी थे।

बाबू जी के अतिरिक्त जो सन्त महाराज जी के निजी सेवक थे, बाकी सज्जन तथा कथा, कीर्तन पाठ और अमृत प्रचार के लिये तैयार-बर-तैयार थे। सो रंग में रंगे हुए, मस्ताने, नारे लगाते

हुए, हरि रंग बांटते हुए प्रेमी सज्जन, सन्त महाराज जी सहित नौवें दिन क्स्त्र जनवरी को मुम्बासा की बन्दरगाह पहुँच गये। स. उजागर सिंघ जी गिल तथा अन्य संगतें दर्शन हित पहुँची, आदर पूर्वक कोठी में पर्दापण किया। मुम्बासा की संगत के प्रेम वश काफी समय तक कीर्तन करते रहे। फिर नैरोबी की संगत आप जी को नैरोबी ले गई। यहाँ पर सिख आबादी काफी थी, जो किसी भी पंजाब के शहर से अधिक ही सिख संगत थी। यहाँ पर जात बिरादरी, माझा, मालवा तथा दोआबे के काफी झगड़े थे पर सन्त महाराज ने फ़रमान किया, ''मेरा देश हिन्द और पंजाब है। गुरू नानक, गुरू गोबिन्द सिंघ जी के नाम लेवा की जीवन रास एक है, फिर हम कोई भी बंटवारा क्यों मानें?'' पहले रामगढ़ियों के गुरूद्वारे में अमृत वर्षा की।

गोरी सरकार, हर आदमी को बड़ी गम्भीरता से देखती थी कि शायद कोई सरकार के विरुद्ध शक्ति ही अपना काम करती हो। सो एक पुलिस इन्सपैक्टर की डयूटी सन्त महाराज की निगरानी पर लगी पर वह स्वंय ही श्रद्धावान हो गया तथा सरकार को सन्त महाराज के धार्मिक विचारों के बारे में लिख दिया।

प्रेम ने नेम तोड़ दिये

मुम्बासा में दीवान सजाये जा रहे थे। दूर पास से संगत दर्शनार्थ पहुँचती थी। हर तरफ सन्त जी महाराज की चर्चा थी। कोई उनकी साधना, कोई नाम बाणी, सिमरण, साधन तथा अन्य बातें करता था। कई सज्जनों पर सन्त मनी सिंघ जी दिआलपुर वालों का भी प्रभाव था कि मैं तो मोटा-मोटा हल चलाने आया हूँ। महापुरुष आयेंगे जो गड्ढें, टीले मिटा कर हृदय अन्दर बस रहे सभी हिसाब-किताब मिटाकर, तुम्हें आत्मिक रूप से महान बना देंगे। सन्त ईश़र सिंघ जी महान शक्तिवान तथा परम योगी हैं। यहाँ पर ही एक सज्जन पहुँचे जिसका नाम ठाकुर सिंघ था। ये पहले मुकंदपुर जालन्धर के निवासी थे। अब नैरोबी में रेलवे में फिटर की नौकरी करते थे, इसने दर्शनों के लिये प्रार्थना की कि मैं काले रंग की बहुत कीमती गर्म अचकन भेंट करके, पहना कर, फोटो खींचने के लिये आया हूँ। यह उसके मन की चाह थी कि सन्त महाराज काली अचकन सहित फोटो खिचवां कर, उसे दें। जब ठाकुर सिंघ जी ने प्रार्थना की तो उसे बिल्कुल ही पता न चला कि उसकी प्रार्थना प्रवान होने में कितनी रूकावट है या फिर कोई और पहलू भी है। उसके लिये तो यह बहुत ही मामूली सी बात थी पर यहाँ तो मामला ही और था।

महापुरुष उस समय तक गले में कफनी ही रखते थे। बाद में कभी-कभी ऊपर काली चादर ओढ़ते थे पर वह बात और थी कि कफनी ही उतार कर उसकी जगह अन्य कोई पोशाक ही बदल जाती। फिर एक बार गले से उतारी हुई कफनी फिर डाली जा सकती है। यह बात भी आप जी के सामने थी। इस समय उनके सामने सैदू का वह दृश्य आया जब बाबा अतर सिंघ जी ने बाबा करम सिंघ जी की समाधि पर खड़े होकर कहा था, ''हे बाबा करम सिंघ! तेरे दरबार में खड़े होकर इस बच्चे को कफनी पहनाने लगा हूँ, इसकी लाज तूने ही रखनी है।'' फिर दोराहे, बाबा किशोरी लाल भल्ला के गृह में अखण्डपाठ की समाप्ति का दृश्य भी आँखों के सामने था जब भल्ला साहिब एक कीमती कश्मीरी शाल भेंट करना चाहते थे। तब बाबा जी ने फरमाया -

''भाई समय आने वाला है कि जब इसके पास उपहारों के ढेर लगेगें। उस समय इस पर उस वर्दी की भी बन्दिश नहीं रह जायेगी। यह स्वतन्त्र होगा, पोशाक भी मर्जी के अनुसार पहनने का हक, इसको प्राप्त होगा, पर अभी तो यह साधना में है। फिर भी जो पूजा, लोगों ने इसकी हमारे जाने के बाद करनी है यदि यह अभी आरम्भ होती है तो हम रोकते नहीं हैं।''

सन्त जी महाराज ने सारी बात एक मन होकर सोची, नियम साधन, फिर विचारों की पक्षता तथा कोई भी बुरा प्रभाव या अपने तथा औरों के आचरण पर असर डालने की बात देख कर आप जी ने कहा था, ''चलो! यदि तुम्हारी यही चाह है तब हम प्रेम के लिये कफनी का नियम भी तोड़ देते हैं।'' साथ ही हंस पड़े। जहाँ जीवन में हर बात की तर्क कर दी, वहाँ यह माया का ही दूसरा रूप बाहरी वर्दी भी है जो मन को प्रभावित करती है। उसका भी त्याग कर दिया समझो।

सो आप जी ने ठाकुर सिंघ की बनवाई काली अचकन तथा चूड़ीदार पाजामा पहन कर ही फोटो खिंचवाई। मानो पिछली क्रिया का ही परित्याग हो गया जो फिर पुनः सन्त जी महाराज की क्रिया का कभी भी अंग न बना। धन्य हैं महापुरुष जिसने प्रेम भेंट प्रवान करने हेतु फकीरी के एक अंग को ही न्यौछावर कर दिया था। फकीरी ने साहों की धारना तो धारण कर ली पर फकीरी का आदर्श तथा आत्म ज्ञान का माहौल सदा वही रहा।

अमृत की दात

सन्त जी महाराज का हर एक दीवान में अन्तिम दिन अमृत प्रचार का हुआ करता था। वह प्राणी जो दीवान का असर महसूस करते, जिन पर प्रचार और विचारों का प्रभाव पड़ा, इसी से ही दिखाई देता था कि वह नाम बाणी से जुड़ने और फिर सिखी में आकर गुरू जी से मिलने का साधन प्रारम्भिक ही है, इसके अन्दर कोई भी जिज्ञासु पहले पाँच प्यारों से अमृत पान करके, फिर उसके बाद ही महापुरुष सिमरण साधन की कोई युक्ति बताते थे। जो सिख नहीं उसे आप दूसरा ही मन्त्र जो उसके निश्चय अनुसार हो उसी का जाप बताया करते थे।

अफ्रीका के दौरे के समय, सन्त महाराज जी के भ्रमण के समय जो सबसे अधिक प्रभावित करने वाली बात थी, वह यह थी कि सन्त जी महाराज स्वंय ही पाँच प्यारों के प्रमुख बनकर अमृत का बाटा तैयार करते और क्रमवार सिघों को अमृत पान करवाते थे। यह बात सौ प्रतिशत सही है कि जो भी प्राणी जिस प्रकार के सिंघ से अमृत पान करता है, उसके मन पर उसी प्रकार की मोहर (छाप) भी लगती है। आम मनुष्य जो अमृत पान करता है, उसके मन पर पाँच प्यारों की छाप लगनी जरूरी है। सो जिन सज्जनों ने अफ्रीका के दौरे के समय अमृतपान किया, उनमें से कोई भी पतित सिद्ध नहीं हुआ। बल्कि ऊचाईयों में ही रहे और अब भी हैं। अफ्रीका में ऐसे सैकड़ों सिंघ थे जिन्होंने सन्त महाराज से अमृत पान किया था। वे यहाँ पर ही नहीं बाद में जब वे अफ्रीका छोड़कर इगलैण्ड में जाकर भी कारोबार किया करते थे, फिर भी वे तैयार-बर-तैयार तथा लोगों के लिये सिखी का उदाहरण थे। अफ्रीका में ही कई विचारों के लोग थे जो सन्त महाराज के विरोधी थे। कई फकीर कुली, जुल्ली, गुल्ली (रोटी, कपड़ा, मकान) तीन ही चीज़ों से निर्वाह करने की राय दिया करते थे। पर सन्त महाराज खुले तौर पर इस मत के थे कि सिंघ नाम ही योग्य बात है। गुरू की आज्ञा है। संसार भर के सुख तुम्हारे ही निमित हैं पर यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि ये केवल तुम्हें शारीरिक निर्वाह तक ही रखने चाहिए। ऐसा खाओ, जिसे खाकर शरीर बीमार तथा लोगों के लिये उपाधि पैदा न करे। वह वस्त्र जिन्हें पहन कर शरीर बीमार तथा दुखी हो, वह सिखी में विवर्जित हैं। बाकी आप बाहरी क्रिया से, किसी महान आत्मा तथा सिख की परख नहीं कर सकते।

सो आप जी सिखों को अमृत का धारणी बना कर, जीवन को गुरू परायण करके, जीवन की जाँच बताते थे। यही कारण था कि सन्त जी महाराज की गाँठ जिस भी सज्जन के साथ जुड़ी, वह जीवन पर्यन्त उनका ही बनकर रह गया। चाहे अफ्रीका रहें, हिन्द आ जायें और कहीं क्यों न रहें? सन्त ईशर सिंघ जी का यह सिमरण पौधा सदा ही महकता रहता है। मेरा विचार है कि करमसर दबलान का सन्त आश्रम छोड़कर कोई ही भाग्यशाली धरती होगी जहाँ सन्त महाराज जी ने छह महीने एक टक ही इतना लम्बा समय, निवास तथा कथा कीर्तन अमृत प्रचार का प्रवाह चलाया हो। सन्त महाराज ने पाँच सौ से अधिक प्राणियों को गुरू के जहाज पर चढ़ाया था।

जहाँ एक ओर सन्त जी के लोग श्रद्धालु थे वहाँ दूसरी ओर विरोधियों की भी कमी नहीं थी। यहाँ पर ही बहुत से काफिर थे जो मन में आता, अनाप-शनाप बातें करते थे। कई तो बहुत अधिक मुँह फट थे, परन्तु सन्त महाराज जी ने कभी भी किसी को बुरा नहीं कहा। हाँ, जब कोई पश्चाताप करके गुरू वाला बनने की सोचे तब आपने कभी उसे धक्का भी नहीं दिया था। कई गुनाहगार भी यहीं पर माफ कर दिये गये थे। एक सज्जन सौदागर सिंघ रूमी था। यह दुनियाँ के अति नीच कर्म करता था, कोई नशा ऐसा नहीं था जो यह न करता हो, मुँह भी साफ रखता था। एक बार इसका लड़का बीमार हो गया। उसके बचने की उम्मीद नहीं थी। लोगों के मनों में बाबा कर्म सिंघ की बख्शीशें तथा रहमतों की चर्चा थी।

उसकी पत्नी ने सन्त जी महाराज की आराधना की। बच्चे को बीमारी से बचा लिया। श्वांस जो रूके हुए थे पुन: चल पड़े थे। इसका पति सौदागर सिंघ भी आया तब वह दर्शनों के लिये पहुँचा। सन्त जी महाराज में सिंघाऊपन जाग पड़ा। आप जी ने इसे जो बाहर ही खड़ा था कहा -

''कई लोग तो केवल मनुष्य जन्म होने के कारण ही मनुष्य हैं अन्यथा उनकी जानवरों जैसी क्रियाएं कभी खत्म नहीं हुई, कई बातों में मनुष्य उनसे सौ दर्जे नीचा है। सूअर तथा कुतो गन्दी खुराक से अच्छी खुराक बनाकर निकालते हैं पर मनुष्य अच्छे अमृतमयी पदार्थ खाकर उन्हें खराब करते हैं और उसमें गन्दगी पैदा करते हैं। क्या मनुष्य का जन्म खाने पीने तथा बद-मस्तियाँ करके ही दिन बिताने के लिये मिला है? हमने इस महिला की प्रार्थना मानकर वाहिगुरू जी से बच्चे के लिये देह नीरोगता की माँग की, तेरी शक्ल तो कुछ और ही माँगती है।''

वह परेशान हुआ, अमृतधारी बना और सदा के लिये आदर्श सिख बन गया। यही एक ऐसी करामात है जो सन्त महाराज तथा अन्य साधुओं से अलग दर्शाती है। प्रेत को सीधा करना मुश्किल नहीं पर मनुष्य के बिगड़े हुए खमीर को बदलना सन्त महाराज की विरासत है।

अफ्रीका में मुम्बासे ही पहुँचे थे वहाँ से आप नैरोबी पहुँचे थे जहाँ पर काफी समय विश्राम तथा हरि कीर्तन की वर्षा की थी। नैरोबी से नैकोरे गये फिर वहाँ से औलटोरेट पधारे थे। औलटोरेट से कौसमू गये। कैसमू से जेकाटर्न आए।

हर जगह ही दीवान का आखिरी दिन अमृत प्रचार का होता था। सैकड़ों ही गुरू से विमुख रूहें, गुरू से मिलाकर सदीवी गुरू वाली बन गईं। आज अफ्रीका से आये सज्जन जो तैयार-बर-तैयार तथा सिख लगन वाले, वही सज्जन दिखाई देते हैं, जिन्होंने अफ्रीका के दौरे के समय कभी एक बार ही महापुरुषों के दर्शन किये थे।

किव सचिआरा होईऐ ?

सन्त वरियाम सिंघ जी
बानी एवं संचालक वि. गु. रू. मिशन

वैराग किसे कहा जाता है, यह क्या होता है ? क्योंकि जब तक वैराग पैदा नहीं होता, माया की मज़बूत जन्जीरें टूटा नहीं करतीं। पहले भाग में वाहिगुरू जी की प्राप्ति की पूर्ण इच्छा होती है, चित में आकर्षण छाया रहता है, नेत्रों से आंसू गिरते रहते हैं। हर समय मिलाप की भावना प्रबल रहती है जैसे कि –

सीने खिच्च जिन्हां ने खाधी ओह कर अराम नहीं बहिंदे।
निहुं वाले नैणां की नींदर ओह दिने रात पए वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी है टोर अनंत उन्हां दी
वसलों उरे मुकाम न कोई सो चाल पए नित रहिंदे॥
डा. भाई वीर सिंघ जी

दूसरे भाग में वे वस्तुएं जो वाहिगुरू जी की प्राप्ति में विघ्नकारी हों, उनका पूर्ण रूप से त्याग, मन में परिपतव हुआ करता है। संसार में सुखों की कोई गिनती नहीं है, संसार में इच्छाओं की पूर्ति होने के कारण, थोड़ी देर के लिये मन में सुख की झलक देती है और मनुष्य के मन में विचार होते हैं कि यदि ये क्षणभंगुर वस्तुएं मुझे प्राप्त हो जाएं तो मैं सुखी हो जाऊँ, इसलिये वह अकारण ही तेली के बैल की तरह पैड़ में चलता हुआ कोल्हू खींचने में ही जुटा रहता है, सुख यह आगे ही आगे बढ़ता जाता है। भरथरी जी कहते हैं ज्यों-ज्यो हम भोगों को भोगते हैं, वे उलट कर मनुष्य को भोगना शुरू कर देते हैं। मनुष्य भोगों में लीन, भोगों के प्रभाव के कारण गल-सड़ जाया करता है जैसा कि –

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै।
जिउ कंचन सोहागा ढालै॥ पृष्ठ – -932

काम भोग पहले आकर्षण भरे प्रतीत होते हैं, पर ज्यों-ज्यों मनुष्य इनमें रूचता चला जाता है, त्यों-त्यों इनकी सीमा आगे ही आगे बढ़ती चली जाती है। मानसिक भूख कभी नहीं पूरी होती, चाहे वे भोग शारीरिक हों, चाहे मानसिक हों, चाहे काम भोग हों, चाहे वे कानों से सुने जाने वाले कामुक गीतों के रूप में भोग हों, गुरबाणी में ऐसा फ़रमान आता है –

रसु सुइना रसु रुपा कामणि रसु परमल की वासु।
रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु।
एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु॥ पृष्ठ – 15

सो इन भोगों की वासना तथा भोगों के रस शरीर के कण-कण में समा जाते हैं। बेशक सभी रोग प्रभु प्यार से विमुख करते हैं, पर फिर भी यह भ्रमित मनुष्य इन्हीं भोगों में बार-बार गुलतान रहता है। कुतो को मालूम नहीं होता कि हड्डी चबाते समय, उसे रस कहाँ से मिल रहा होता है ? वह हड्डी को चबाता रहता है। उसे यह मालूम नहीं कि जो रस उसे आ रहा होता है, वह उसी के जबाड़ों में से निकले हुए खून से ही आ रहा है और वह समझता है कि उसे हड्डी में से स्वाद आ रहा है। इसी तरह से भोगों में गुलतान हुए जीव को पता नहीं होता कि ये सभी भोग मुझे ही भोग रहे हैं और मुझे कमज़ोर बना रहे हैं, काया को नष्ट कर रहे हैं। इससे भी अधिक जो अपने स्वरूप को पहचानने के लिये मानस जन्म धारण किया है, वह भोगों में लीन होने के कारण व्यर्थ ही बीतता जा रहा है। जैसे कि पहले भी बताया था कि श्री रामचन्द्र जी के दरबार में कथा हो रही थी। वशिष्ट जी कथा कर रहे थे। अचानक जब श्री राम चन्द्र जी ताली बजाकर हंस पड़े तो वशिष्ट जी ने आपके हसने का कारण पूछा। तब श्री राम चन्द्र जी ने बताया कि, ''मैं इस कीड़े को देखकर हसा हूँ।'' जब वशिष्ट जी ने असली भाव पूछा तब श्री राम चन्द्र जी ने बताया कि इस कीड़े की दो टांगे टूटी हुई हैं और दीवार पर चढ़ता है और फिर गिर जाता है पर इसके मन में प्रबल वासना समाई हुई है कि मैं यह ऽऽ लाख यौनियों का चक्कर पूरा करके, मानस जन्म प्राप्त करके, विधिपूर्वक यज्ञ करके, करोड़ों वर्षों तक फिर इन्द्र लोक में सुख भोगूगां। कहने लगे कि इस जीव पर भोगों का कितना प्रभाव होता है ? तथा वह निखिद्ध यौनियों में पड़ा हुआ भी अपनी स्मृति को भोगों की याद में बिता रहा है और इस मूर्ख को यह मालूम नहीं कि निज स्वरूप की पहचान करके परम पद की प्राप्ति करूं।

भोगों की लालसा यहीं पर ही समाप्त नहीं होती। जीव मानस शरीर छोड़ देता है, परलोक में जब अपने कर्म भोगने के लिए, दूतों के वश में हुआ, बुरे कर्मों के फलस्वरूप दुःख सहन करता हुआ दरगाह में जाता है। उसे अपने जीवन काल में किये गये पुण्य कर्म याद आते हैं। उन पुण्य कर्मों का फल चाहता है। किसी को गन्धर्व लोक की प्राप्ति हो जाती है, वहाँ पर मात-लोक के राजा की अपेक्षा सौ गुणा अधिक सुख हुआ करता है। किसी को पितृ-लोक की प्राप्ति हो जाती है, कोई स्वर्ग लोक, इन्द्र लोक, प्रजापति लोक, अजान देव लोक, कर्म देव लोक में उच्च कोटि के सुखों की भावना से पहुँचता है। कोई लाखों वर्ष

ब्रह्मलोक के सुखों की लालसा से उस लोक में पहुँचता है। इन भोगों की इच्छा रखने वाला जीव वैरागी नहीं हुआ करता। वैराग उसे कहते हैं जो इन सभी सुखों का त्याग कर दे और किसी भी भोग की मन में वासना न रहने दे, उसे वैराग कहा जाता है जैसा कि महापुरुषों का फ़रमान है –

ब्रह्म लोक लौं भोग जे चहै सबन को तिआग।
वेद अरथ गिआता मुनी कहत ताहि वीराग॥

ब्रह्मलोक से लेकर, जितने भी संसार के भोग हैं, उन सभी भोगों को पूर्ण रूप में जो त्यागने के लिये तैयार हो जाता है, उन वेदों के अर्थ, भावों को जानने वाला मुनि पुरुष वैरागी कहलाता है अर्थात इसी का नाम वैराग है।

सो भाई तिलोका जी के शरीर त्यागने के पश्चात राजकुमारी के हृदय में बहुत गहरी चोट लगी, जिसे न तो वह बोलकर मुख से प्रकट कर सकती है और न ही किसी अन्य भाव से प्रकट कर सकती है। वह चोट ऐसी है कि जैसे किसी ने बाण मार कर हृदय-भेदन कर दिया है। जैसा कि संकेत आता है –

कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु।
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु॥

पृष्ठ – 1374

सो हृदय में छेद हो गया, अब उसे न तो सुन्दर वस्त्र लुभाते हैं, न ही सुन्दर घोड़ों की सवारी मन को आकर्षित करती है, न ही वह अपनी सखियों को लेकर नावों पर दरिया के किनारे तरंगों के साथ किल्लोलें करती है, न ही शिकार खेलने जाती है, न ही वह खाने पीने में रुचि दिखाती है। जो कुछ भी माता-पिता प्यार से दे देते हैं, उसमें से थोड़ा बहुत अंगीकार कर लेती है, वह भी इसलिये ताकि माँ-बाप को दु:ख न हो। माता-पिता को उसके विरह की जानकारी है, वे पूरी कोशिश करते हैं कि राजकुमारी अपनी पूर्व अवस्था में आ जाये, जैसे वह घोड़े पर सवार होकर जंगली जानवरों का शिकार किया करती थी। उसके मन में ख्व घंटे भाई तिलोका जी की मूर्ति समाई रहती है और उसके वचन कि यदि तूने मुझे मिलना है तो मैं तुझे रास्ते पर डाल देता हूँ। तू गुरू नानक पातशाह द्वारा बताये गये श्रेष्ठ मन्त्र वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू-वाहिगुरू का जाप करते रहना। ऐसा करने से जो दूरी, जन्म-जन्म के संस्कारों से, वाहिगुरू जी से हो चुकी है, वह कम होती चली जायेगी। स्मृति के पुल से माया की जो गहरी खाई है, वहाँ पर पुल बन जायेगा, फिर नाम मण्डल तक तू सहज ही पहुँच जायेगी। मेरे सतगुरू नानक पातशाह, पूर्ण परमेश्वर हैं, वे जीवों के उद्धार के लिये कलयुग में विचरण रहे हैं। बार-बार कहते रहना कि मेरे सतगुरू जी तेरे पास जरूर आएंगे। मैंने तो उनसे एक कण मात्र ही उनसे प्यार का लिया है, जिसके फलस्वरूप तुझे, मुझ से प्यार हो गया। वह तो प्यार का स्वरूप ही हैं और वह सारे संसार में निर्गुण होकर संसार को प्यार करते हुए, सम्भालते हुए और सगुण स्वरूप में जैसे 'तू' और 'मैं' हैं, इस स्वरूप में वह प्यार करते हैं और बिछुड़े हुए को उनके प्रीतम (अपने निर्गुण स्वरूप) से मिला देते हैं। तू मन में आशा रखना वे जरूर ही तेरे पास आएगें, पर जैसा तुझे बताया गया है कि उनके बताए गये मन्त्र का जप करते रहना, कभी इस वाहिगुरू-वाहिगुरू के जाप की माला जपना बन्द मत कर देना, फिर वह जरूर ही तेरे पास आएंगे और तुझे आत्म स्वरूप का ज्ञान बख्शेगें। उस लोक में पहुँचा देगें जहाँ कभी भी जन्म-मरण नहीं हुआ करता और सदीवी जीवन प्राप्त हो जाता है। पर राजकुमारी! एक बात का तू ध्यान रखना यदि तूने उस परम लोक में पहुँचना है तो तुझे अपना अस्तित्व मिटाना पड़ेगा। तेरा अस्तित्व ही तेरे और मेरे में अन्तर डाल रहा है। इस अस्तित्व को मेरे सतगुरू जी हउमैं कहते हैं। इस हउमैं ने ही जीव को अन्धेरे में फैंक दिया है। सो ये वचन राजकुमारी को बार-बार याद आ रहे हैं और स्वत: सिद्ध ही उसके होंठ हिलते हैं और वाहिगुरू शबद का जाप ऐसे होना शुरू हो गया जैसे कि स्वत: सिद्ध ही *Artizen Well* (अपने आप जल देने वाले कूएं) में से पानी निकल रहा हो और उसके होंठ सदा ही हिलते रहते थे। उसे किसी प्रकार की माला की जरूरत नहीं और उसे यह बताने की जरूरत नहीं थी कि तू अढ़ाई घंटे रोज़ वाहिगुरू-वाहिगुरू कह कर माला फेरा कर। इसके पूर्व जन्म के कर्म अंकुर प्रकट होकर तत्व वेता महापुरुष के साथ मिलाप हो गया और काया कल्प हो गई। राजकुमारी ने पूर्व जन्म प्रभु दर्शन की प्रतीक्षा में व्यतीत किये हुए थे। पर कोई तत्ववेता महापुरुष नहीं मिला था जो उसे ज्ञान करवा देता। साधन इसने पूरे किये हुए थे। जैसा कि महापुरुषों के सिद्धान्त के अनुसार जो साधन करता हुआ शरीर त्याग दे उसकी वैसी ही गति हो जाया करती है। पहले वह ब्रह्म लोक के सुखों को भोगता है फिर वह पीछे की गई नाम साधना के फल को साथ लेकर, मानस शरीर धारण करता है और साधना के बल पर नाम जपता है। फिर उसका सौभाग्य जाग जाये, तब तत्व वेता महापुरुष का मिलाप हो जाया करता है। जिसका मिलाप होने के पश्चात मन में पड़ा हुआ अन्धेरा पूर्ण रूप से मिट जाया करता है। ज्ञान हो जाने से वह जाग जाया करता है और द्वैत खत्म होकर, एक ही स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर, सभी दुखों से मुक्त हो जाया करता है। महाराज जी फ़रमान करते हैं –

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक
जनम जनम की सोई जागी॥ पृष्ठ – 204

ज्ञान, बातों से कभी नहीं हुआ करता और न ही बातूनी ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ करता है। महाराज जी ने फ़रमान किया है –

गिआनु न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सारु॥
पृष्ठ – 465

बातूनी ज्ञान प्राप्त करने वाले को यह बताया जाता है कि तू यह समझ कि मैं आत्मा हूँ , मैं शरीर नहीं हूँ, मैं ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं पाँच प्राण नहीं हूँ, मैं बुद्धि नहीं हूँ, मैं चित नहीं हूँ, मैं हंगता और ममता से लिपटा हुआ जीव नहीं हूँ। मैं शुद्ध आत्मा हूँ, मैं जन्मता–मरता नहीं हूँ, सदा परम सुखी हूँ, मुझे कभी बिछोड़ा नहीं होता, मैं सदा–सदा नित्य प्रति हूँ। यह एक पहाड़ा है जो ज्ञान प्राप्त करने वाले सदा ही रट लगाते रहते हैं, पर गुरमत ने इसे प्रवान नहीं किया जो तत्व वस्तु इसके अन्दर डाली गई है, वह तत्व वेता महापुरुषों के बिना प्राप्त नहीं होती। चाहे आत्मा नित्य प्रति है, पर जीव का ज्ञान वहाँ तक पहुँचता नहीं है। इसलिए ऐसा निश्चय रखने वाले को आत्मा का ज्ञान नहीं हुआ करता। चाहे हज़ारों वर्षों तक क्यों न रट लगाते रहे कि मैं आत्मा हूँ, पर फिर भी देह अधिआस नहीं टूटा करता। देह का मिलाप और विछोड़ा, देह की उपलधियाँ और अनुपलधियाँ, देही के सुख और दु:ख सदा ही बने रहते हैं। यह अधिआस टूटा नहीं करता। इस ज्ञान को गुरू महाराज जी मुख ज्ञानी या चुँच ज्ञानी कहते हैं और इसे गुरबाणी में कई स्थानों पर कौआ ज्ञान भी कहा गया है। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि जगत कौए की तरह है। इसके चोंच रूपी मुँह में ज्ञान है, भाव ज्ञान की बातें जुबान पर हैं, पर हृदय में इसका कोई प्रभाव नहीं है। हृदय में विषय विकारों, अपवित्र चीजों के भोगने की इच्छा है, अन्तस में लोभ, झूठ तथा अभिमान के विकारों के ढेरों के ढेर भरे पड़े हैं। जिनकी दुर्गन्ध पवित्र पवन को दूषित कर रही है महाराज जी फ़रमान करते हैं –

जगु कऊआ मुखि चुंच गिआनु।
अंतरि लोभु झूठु अभिमानु।
बिनु नावै पाजु लहगु निदानि॥ पृष्ठ – 832

हरि के द्वार पर चुन्च ज्ञान प्रवान नहीं हुआ करता क्योंकि वहाँ पर केवल अन्तसकरण की सफाई का ही महत्व होता है। सो इसलिये गुरू महाराज जी कहते हैं कि नाम के बिना कोई भी कर्म गिनती में नहीं आया करता। नाम की प्राप्ति, पूरे सतगुरू की सेवा करने के पश्चात प्राप्त होती है और नाम चित में बस जाता है। जब पूरे सतगुरू का मिलाप हो जाता है तो वह चित में नाम का वास करवा देता है क्योंकि नाम के अतिरिक्त सभी उपलधियाँ, प्राप्तियाँ झूठी हैं और जीव को बन्धन में डालने वाली हैं। बेशक बाहरी रूप से सभी कुछ अच्छा लग रहा होता है।

जो कुछ गुरू का हुक्म है, उसका पालन करना उसकी साधना करना, जीव के लिए आवश्यक हुआ करता है। सहज अवस्था में पहुँचने के लिए अज्ञान का पूर्णतया नाश हो जाता है, जहाँ अपने स्वरूप का पूर्ण जलाल, चमकता–दमकता प्रकट हो जाता है, उस स्थान पर पहुँचने के लिए शबद की साधना करनी पड़ती है तथा इस सच्चे नाम का बड़प्पन दरगाह में प्रवान है। चुन्च ज्ञानी, महापुरुषों द्वारा रचित, बेअन्त पुस्तकें पढ़कर रट लेते हैं और कौए की तरह काँव–काँव करते हुए, ब्रह्मज्ञान का उपदेश दृढ़ करवाते हैं परन्तु स्वंय उस अवस्था से पूरी तरह से अनभिज्ञ हुआ करते हैं। उन्होंने अभी तक आत्म साक्षात्कार का जलवा नहीं देखा होता, उस प्रकाश का अनुभव नहीं किया होता, जिस प्रकाश को प्राप्त करके फिर अज्ञान का अन्धेरा नहीं रहता। उस विद्या को नहीं जाना, जिसे जानने के पश्चात, अन्य किसी विद्या की जरूरत नहीं रहती, उस सुख को प्राप्त नहीं किया जिसे प्राप्त करके किसी अन्य सुख की आवश्यकता नहीं रहती पर वह केवल वाच ज्ञानी होने के कारण महापुरुषों द्वारा उच्चरित वचन, जिज्ञासुओं को सुनाता है, पर स्वंय ने कुछ भी नहीं जाना होता। लोगों को ज्ञान देता है ऐसा मन का अन्धा पुरुष किसी का क्या भला कर सकता है? वह किसी को क्या ज्ञान दे सकता है? किसी को सत्य का क्या रास्ता दिखा सकता है? उसे तो स्वंय को ही दरगाह में कोई स्थान नहीं मिलता। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

सतिगुर सेवि नामु वसै मनि चीति।
गुरु भेटे हरि नामु चेतावै बिनु नावै होर झूठु परीति।
गुरि कहिआ सा कार कमावहु।
सबदु चीन्हि सहज घरि आवहु।
साचै नाइ वडाई पावहु।
आपि न बूझै लोक बुझावै।
मन का अंधा अंधु कमावै।
दरु घरु महलु ठउरु कैसे पावै। पृष्ठ – 832

हृदय के अन्दर की जानने वाले सतगुरू और घट–घट में व्यापक वाहिगुरू को प्राप्त करने के लिए सदीवी, उस नाम को जपने की जरूरत है, उसकी ज्योति उसके अन्दर पूर्ण रूप में समाई हुई है, उससे कोई भी वस्तु छिपी हुई नहीं रह सकती। वह वाहिगुरू गुरू की बाणी को पूर्ण रूप से धारण करके तथा दृढ़ता और प्रेम

पूर्वक साधना करके, सतगुरू की कृपा के कारण, प्राप्त होता है, पर जब उसका मिलाप हो जाता है, उस समय उसका अपना अस्तित्व नहीं रहता। वह परमेश्वर रूप ही हो जाया करता है। जो सदीवी सत-अवस्था है। सतगुरू से मिलकर महान बड़प्पन प्राप्त होता है, सभी दुखों का अन्त हो जाता है, हृदय में सदीवी नाम समा जाता है, नाम हृदय में बस जाता है और नाम सुखों का समूह होने के कारण सारे सुख, नाम के प्राप्त होते ही, स्वंयमेव मिल जाते हैं। शरीर निरोग हो जाता है और जीव-आत्मा नाम के बल पर प्रभु के प्यार में समाई हुई, उसमें लीन हुई, उसी का रूप हो जाती है। गुरू मत, गुरू का उपदेश मानने से जिज्ञासु की करनी पवित्र हो जाया करती है, निजित्व की पहचान करके, प्रभु में तदरूप हो जाता है, परिवार, संगी, साथियों, कुलों का उद्धार हो जाता है। फ़रमान है -

हरि जीउ सेवीऐ अंतरजामी।
घट घट अंतरि जिस की जोति समानी।
तिसु नालि किआ चलै पहनामी॥
साचा नामु साचै सबदि जानै।
आपै आपु मिलै चूकै अभिमानै।
गुरमुखि नामु सदा सदा वखानै॥
सतिगुरि सेविऐ दूजी दुरमति जाई।
अउगण काटि पापा मति खाई।
कंचन काइआ जोती जोति समाई।
सतिगुरि मिलिऐ वडी वडिआई।
दुखु काटै हिरदै नामु वसाई।
नामि रते सदा सुखु पाई।
गुरमति मानिआ करणी सारु।
गुरमति मानिआ मोख दुआरु।
नानक गुरमति मानिआ परवारै साधारु॥ पृष्ठ - 833

वाहिगुरू-वाहिगुरू दिन रात जपने से यह जो झूठा निजित्व है, झूठी मनौत है, अपने आपको शरीर समझना, अपने आपको जीव समझना यह खत्म हो जाया करती है। हरि प्रेम के गीत गाना, प्रभु के निकट जाना होता है। गुरू के द्वारा मन में जब प्रतीति उग जाती है कि मैं देह नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, और नाम के साथ जब भली भान्ति परिचय हो जाता है, काया कन्चन जैसी निरोग हो जाती है, अन्दर से काल का भय समाप्त हो जाता है और प्रभु की ज्योति में मिल जाता है पर यह उनकी अवस्था हुआ करती है जिनका आधार परमेश्वर का नाम है, जो सभी में समाए हुए परमेश्वर के नाम का सहारा अन्दर धारण किये रहते हैं और पल भर भी नाम से टूट कर नहीं रह सकते। यह शरीर एक घर है जिसके दस द्वार हैं। इसमें पाँच चोर, इसका घर लूटने के मौके की तलाश में रहते हैं और जीव पर सदा बाण तान कर रखते हैं कि कब इसे नीचे गिराया जाये। ये पाँचों विषय इसी मौके की तलाश में रहते हैं कि कब हमारा वार चले, यह जीव अवेसला हो और हम इसके अन्दर रुच जायें -

एकु गिरहु दस दुआर है जा के
अहिनिसि तसकर पंच चोर लगईआ।
धरमु अरथु सभु हिरि ले जावहि
मनमुख अंधुले खबरि न पईआ॥ पृष्ठ - 833

क्योंकि वाहिगुरू-वाहिगुरू ने हमें अपने घर से निकाल दिया तथा इस पर हमारा जोर नहीं चल रहा। न ही हम अब इसके धर्म को लूट सकते हैं, न इसके नाम धन को लूट सकते हैं, न ही अपना प्रभाव डालकर, माया की गहरी खाई में धक्का दे सकते हैं और इसके विपरीत जो मनमुख है उसे दिन रात लूटते हैं -

इसु देही अंदरि पंच चोर वसहि
कामु क्रोधु लोभु मोहु अहंकारा।
अंम्रितु लूटहि मनमुख नही बूझहि कोइ न सुणै पूकारा॥
पृष्ठ - 600

नाम जपने वाला जो शरीर है यह एक प्रकार से सोने का किला है जो रतनों से भरा पड़ा है, इसे कोई नहीं लूट सकता पर जो अज्ञानी पुरुष है, उसे चोर-उच्चके लूटने के लिये सदा ही दाव में रहते हुए इसके अन्दर छिपे रहते हैं। पर जिसके अन्दर वाहिगुरू-वाहिगुरू की धुन चल रही है और जिसने गुरू के उपदेश को पूर्ण रूप में पालन किया है -

कंचनु कोटु बहु माणकि भरिआ
जागे गिआन तति लिव लईआ।
तसकर हेरू आइ लुकाने
गुर कै सबदि पकड़ि बंधि पईआ॥ पृष्ठ - 833

वह अपने ज्ञान के प्रकाश में इनके ठिकानों को ढूँढ कर काबू में कर लेता है, फिर इनका वश नहीं चलता।

वाहिगुरू का नाम जहाज है और बेड़ा है। इसे चलाने वाली गुरबाणी है, गुरू इसे अपना उपदेश बक्श कर पार करता है, यमों के जो जगातिए (दूत) बन कर इसके पुण्यों को लूटते हैं, उनकी हिम्मत नहीं पड़ती कि इसके निकट आ सकें। कोई चोर इसके नाम धन को लूट नहीं सकता क्योंकि इसका प्रताप ही इतना अधिक है कि इसके निकट ही नहीं आ सकते। नाम में रमा हुआ जीव परमेश्वर के गुण गाता है गुरू की बात मानकर यह जीव मेरा-तेरा छोड़ देता है और नाम धुन द्वारा अपने निज घर दशम द्वार में प्रवेश कर लेता है। गुरू द्वारा मन एक स्थान पर टिका लेता है और वाहिगुरू जी को बढ़-चढ़ मिला जाता है। प्रत्यक्ष मेल हो जाता है, दर्शन करके मन तृप्त हो जाता है, कान गुरू की बाणी

और नाम धुन के रस में पूरी तरह मस्त हो जाते हैं। यह जीव आत्म जिसे रूह भी कहा जाता है, वह नाम रस में भीग जाता है, प्रसन्न हो जाता है और इसी नाम की मस्ती में हरि को याद करता है, तीनों गुण, रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण सदा के लिये दूर हो जाते हैं। इन्हीं गुणों के कारण ही माया का मोह चिपटा हुआ था तथा नाम अभ्यास द्वारा सहज अवस्था जिसे चौथा पद कहा जाता है, यह गुरू द्वारा प्राप्त हो जाया करती है। दृष्टि खुल जाती है और समता वृति प्राप्त हो जाती है। हर स्थान पर ऐसा प्रतीत होता है कि मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, यह तो मेरा प्रभु सभी जगह खेल कर रहा है वह स्वंय ही कण-कण में फैला हुआ है, सभी ओर नाम की ज्योति पसर रही है, न समझ में आने वाले हरि का ज्ञान हो जाता है, हरि हमारा बलहीनों का मेहरबान बन जाता है और भक्ति भाव द्वारा नाम में समा जाईदा है।

हरि हरि नामु पोतु बोहिथा खेवटु सबदु गुरु पारि लंघईआ।
जमु जागाती नेड़ि न आवै ना को तसकरु चोरु लगईआ।
हरि गुण गावै सदा दिनु राती मै हरि जसु कहते अंतु न लहीआ।
गुरमुखि मनूआ इकतु घरि आवै
मिलउ गोपाल नीसानु बजईआ।
नैनी देखि दरसु मनु त्रिपतै स्रवन बाणी गुर सबदु सुणईआ।
सुनि सुनि आतमदेव है भीने रसि रसि राम गोपाल रवईआ।
त्रैगुण माइआ मोहि विआपे तुरीआ गुणु है गुरमुखि लहीआ।
एक द्रिसटि सभ सम करि जाणै
नदरी आवै सभु ब्रहमु पसरईआ।
राम नामु है जोति सबाई गुरमुखि आपे अलखु लखईआ।
नानक दीन दइआल भए है
भगति भाइ हरि नामि समईआ॥ पृष्ठ - 833

सो ऐसे चुन्च ज्ञान प्राप्त करने से जीव कहीं भी नहीं पहुँच सकता। इसके लिये साधन करने बहुत जरूरी हैं। प्राचीन समय में आत्मा को साक्षात्कार करने के लिए बहुत कठिन साधन करने पड़ते थे।

एक कथा आती है कि जब परमेश्वर ने संसार रच लिया और माया का प्रभाव पूरी तरह से संसार में फैला कर, जीव को भ्रमित कर दिया। उस समय अज्ञान वश हुए जीव के कल्याण के लिये प्रभु ने देवताओं को बुलाया और कहा कि, ''संसार में एक अति बहुमूल्य वस्तु है, तुम इसे छिपा दो, जहाँ कोई भी न पहुँच सके और न ही पता चल सके। यह वस्तु सभी सुखों का मूल है, समस्त ज्ञान का सार है, सभी कुछ है, सभी दुखों का अन्त करने में समर्थ है, इसका मूल्य कोई नहीं बता सकता, इसलिये यह अति बहुमूल्य वस्तु वहाँ पर छिपाओ, जहाँ किसी का हाथ न पहुँच सके। सांसारिक जीव इस चीज़ को प्राप्त करने के लिए अनेक यत्न करेंगे और इसकी खोज करेंगे। सो इस बात से सावधान होकर ऐसे स्थान पर छिपाओ जहाँ पहुँचना कठिन हो जाये।'' उस समय देवताओं ने कहा कि हम गहरे समुद्र को देख आये हैं, बर्फो से लदे हुए पहाड़ भी देख आए हैं, बड़ी-बड़ी गहरी-गहरी खाईयाँ भी देखी हैं, धरती के अन्दर भी देखा है, जहाँ आप आज्ञा दें, हम वहीं पर रख देंगे। भगवान ने कहा कि, ''यह जो मनुष्य बनाया है, इसने कोई स्थान ऐसा नहीं छोड़ना, जहाँ यह इसकी तलाश न कर सके। इसने विज्ञान की सहायता से धरती का पेट फाड़ कर सोना, चाँदी, तरल गैसें तथा अनेक वस्तुएं जो गुप्त रखी हुई हैं, वे निकाल कर इसके माया के प्रभाव में आकर, अपने प्रयोग में ले ली है। न तो इसने पहाड़ों की चोटियों को छोड़ना है, इसने यन्त्र बना लेने हैं, जिन्हें हाथों में लेकर गहरी खाईयों में पड़ी वस्तुओं को भी खोज लेगा। इसने धरती के चारों ओर चक्कर लगाकर आसमान में कोई जगह ऐसी नहीं बचने देनी जहाँ इसकी नज़र न जा सके। बाहर से तो इसने ढूँढ ही लेना है पर यह जो वस्तु मैं तुम्हें कहता हूँ यह तो बहुत ही बहुमूल्य है, यह किसी अधिकारी के हाथ में ही आनी चाहिए।'' उस समय देवताओं ने कहा कि, ''हे करन-कारण समरथ प्रभु! आप स्वंय ही अर्न्तयामी हो, हमें कोई स्थान ऐसा नहीं मिला, जहाँ पर इस अति बहुमूल्य वस्तु को छिपा दिया जाये।'' उस समय प्रभु ने कहा कि, ''देखो! जो मैंने जीव बनाया है, वह बाहर से तो सभी कुछ ढूँढ सकता है, पर इसने अपने अन्दर से नहीं ढूँढना, मैं इस वस्तु को इन्हीं जीवों के अन्दर ही छिपा देता हूँ।'' उस समय देवताओं ने कहा कि, ''हजूर! कभी न कभी तो इस मनुष्य ने अन्दर झांकना ही है वह फिर अन्दर से निकाल ही लेगा।'' तब प्रभु बोले, ''इसे मैं पूरी तरह से ढक दूँगा। इसके ऊपर सबसे पहले हउमैं की पर्तें जमा दूँगा जिसके प्रभाव में आकर, यह अपने आपको मुझ से अलग समझना शुरू कर देगा और अपना अनास्तित्व होते हुए भी अपना अस्तित्व कायम कर लेगा और 'मैं' तथा 'मेरी' में उलझ जायेगा। इसे रोग लग जायेगा जिसे हउमैं कहा जाता है। जिस वस्तु को मैं छिपाना चाहता हूँ, वह मैं स्वंय ही हूँ, मैं स्वंय ही किरत में आकर, कण-कण में आकर, इसे सता दूँगा पर यह अज्ञान वश हउमैं के प्रभावाधीन, मुझे अन्दर से नहीं ढूँढ पायेगा, बाहर से इसे मायिक सुखों की प्राप्ति होगी पर यह सन्तुष्ट नहीं होगा। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं-

सुन्दर सेज अनेक सुख रस भोगण पूरे।
ग्रिह सोइन चंदन सुगंध लाइ मोती हीरे।
मन इछे सुख माणदा किछु नाहि विसूरे।

सो प्रभु चिति न आवई विसटा के कीरे।
बिनु हरि नाम न सांति होइ कितु बिधि मनु धीरे॥
पृष्ठ – 707

बाहरी उपलधियों के कारण यह सुखों की लालसा करता रहेगा और उन क्षण-भंगुर सुखों के वशीभूत मेरे से विमुख रहेगा पर मैं इसके कल्याण के लिए अपने अति प्यारे सन्तों को यह कार्य सौंपूगा कि तुम इस जीव को झूठे सुखों में गुलतान हुए को, सच्चे सुख का ज्ञान दो। इस अति दुखी हुए जीव को बताओ कि परम आनन्द परम सत, परम चेतन, प्रभु तेरे अन्दर ही है, तेरी उससे दूरी तेरी हंगता और ममता ने डाली हुई है। जैसे कि –

सब किछु घर महि बाहरि नाही।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही।
गुरपरसादी जिनी अंतरि पाइआ
सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ॥ पृष्ठ – 102

सो मेरे महापुरुष इस बात का ज्ञान करायेंगे कि जिस सुख को तू ढूँढता फिरता है, वह तेरे अन्दर है। उस साधु की कृपा से यदि इस जीवन से साधना कर ली, तो यह जन्म जन्मांतरों का बिछड़ा हुआ मिल जायेगा। नाम ध्यान के साथ-साथ इसे यह मत मिल जायेगा जिससे यह इस गुप्त खजाने को अन्दर से ही ढूँढ लेगा –

झिमि झिमि वरसै अंम्रित धारा।
मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा।
अनद बिनोद करे दिन राती सदा सदा हरि केला जीउ।
जनम जनम का विछुड़िआ मिलिआ।
साध क्रिपा ते सूका हरिआ।
सुमति पाए नामु धिआए गुरमुखि होए मेला जीउ।
जल तरंगु जिउ जलहि समाइआ।
तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ।
कहु नानक भ्रमु कटे किवाड़ा
बहुड़ि न होईऐ जउला जीउ॥ पृष्ठ – 102

सो प्रभु ने कहा कि सबसे पहले उसके ऊपर हउमैं का कूड़ा-कबाड़ा होगा, जो निरा ही रोग है, जो इस जीव को मुझ से किसी भी तरह से मिलने नहीं देगा क्योंकि हउमैं तत्व सदा ही परिपूर्ण नाम का विरोधी तत्व होने से अपना अस्तित्व छोड़ने के लिये तैयार नहीं होगा। फिर मैं दूसरी पर्त उस पर अज्ञान की चढ़ाऊँगा। फिर अनेक प्रकार के रस कुरस जो जीव को सदा ही मोहित करते रहेंगे, उनकी पर्ते चढ़ाऊँगा। जिसके फलस्वरूप आत्म तत्व को खोजकर, प्राप्त कर सकना इस जीव के लिये असभ्भव होगा। देवताओं ने कहा कि, ''हे प्रभु! इस आत्म धन को कौन प्राप्त करेगा?'' तब भगवान बोले, ''मेरे अन्दर अभेद हुए गुरमुख इन पर्तों को पार करके, आत्म साक्षात्कार करवायेंगे जो वास्तव में मैं ही सन्त रूप में होऊंगा, गुरू उपदेश की पालना एवं साधना करके, इस जीव के सारे भ्रमों का नाश होने पर, इसके अज्ञान का नाश हो जायेगा और फिर यह मेरी ज्योति में समाकर परम सुखी हो जायेगा पर इसे खोजने की अति आवश्यकता है। मेरे महापुरुष इसे वह मन्त्र देंगे, जिसका जाप करके यह कठोर पर्तों में, बहुत बड़ा छेद (क्ब्भह्द्ग) कर देगा। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

इहु सरीरु सभु धरमु है
जिसु अंदरि सचे की विचि जोति।
गुहज रतन विचि लुकि रहे
कोई गुरमुखि सेवकु कढै खोति।
सभु आतम राम पछाणिआ
तां इकु रविआ इको ओति पोति।
इकु देखिआ इकु मंनिआ इको सुणिआ स्रवण सरोति।
जन नानक नामु सलाहि तू सचु सचे सेवा तेरी होति॥
पृष्ठ – 309

यह एक ऐसी कथा है जो प्रतीक रूप में हमें यह बताती है कि वाहिगुरू जी तेरे अन्दर समाये हुए हैं। आत्मा परमात्मा एक ही है, ये दो नहीं हैं। उसे साक्षात्कार करना तेरा परम मनोरथ है, जब तक तेरा गुरमुख से मिलाप नहीं होता, तुझे रास्ता नहीं दिखाई देगा। सो आत्म तत्व को साक्षात्कार करने के लिए, तत्व वेता महापुरुष की आवश्यकता है जिसके बारे में फ़रमान है –

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए॥
पृष्ठ –749

गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि आत्म वस्तु इस देही के अन्दर छिपी हुई है। गुप्त रतन इस शरीर के अन्दर है। गुरमुख ऐसी सुमति देता है जिसके द्वारा यह जीव अन्दर खुणना (खोजना) शुरू कर देता है और आत्म वस्तु तक पहुँच जाता है। आत्म वस्तु के प्रकट होते ही हउमैं तथा उसके परिवार के सभी अवगुणों का एक दम नाश हो जाता है। आत्म साक्षात्कार हो जाता है, गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं –

सभु आतम रामु पछाणिआ
तां इकु रविआ इको ओति पोति।
इकु देखिआ इकु मंनिआ इको सुणिआ स्रवण सरोति।
जन नानक नामु सलाहि तूँ सचु सचे सेवा तेरी होति॥
पृष्ठ – 309

जब से संसार की सृष्टि हुई है, तभी से ही सत और परम

सुख की खोज, यह जीव कर रहा है, इसने बेअन्त युक्तियाँ, तरीके सत तक पहुँचने के लिए प्रयोग किये हैं। कई तो बहुत कठोर हैं, कई सरल हैं पर हर स्थान पर प्राप्ति उसे ही हुई है जिसे समरथ गुरू का मिलाप हो गया, समरथ गुरू ने शबद का प्रकाश इसके हाथ में पकड़ा कर इसे खोज के लिए तत्पर कर दिया।

साध संगत जी! आपकी जानकारी के लिये कुछ साधन जो गुरू नानक पातशाह के अवतरण से पहले प्रचलित हैं उनके बारे में यहाँ पर बताना कोई कोताही नहीं होगी। जिनका विवरण अंकित किया जा रहा है।

सतयुग में मनुष्यों की मनोवृति बहुत उच्च थी, वे सत्य को हर जगह फैला हुआ देखते थे और 'मैं' का भाव उनमें बहुत कम था, वे ज्ञान में रहते थे और प्रभु से मिले हुए थे। त्रेता युग में जीव की मनोवृति बिखर गई और इसने यज्ञादि करने शुरू कर दिये। यज्ञों की कोई भी गिनती नहीं थी। इन्हें करवाने के लिये पुरोहित वर्ग अस्तित्व में आया। अनेक प्रकार के यज्ञ करवाते रहे। लोग शुभ कर्म किया करते थे। अभी भी जीव का पूर्ण रूप से पतन नहीं हुआ था। पर उसके अन्दर हउमैं का अन्धेरा काफी बढ़ चुका था, उसे सर्व व्यापक आत्मा की जगह अपने अस्तित्व का भ्रम पैदा होने लगा। इस प्रकार द्वापर युग में अनेक प्रकार की पूजा प्रचलित हुई, लोग यज्ञ भी किया करते थे, पूजा भी करते थे और काफी लम्बे समय तक तप भी किया करते थे। मोह-माया का प्रभाव अभी तक भी पूरी तरह से मनुष्य को काबू में नहीं कर पाया था। अनेक प्रकार की योग साधना करके, क्लेशों को दूर कर सकते थे और ज्ञान प्राप्त होने के उपरान्त परमेश्वर की प्राप्ति हो जाया करती थी। पर हउमैं रोग के कारण प्रभु प्राप्ति का कार्य काफी कठिन हो गया क्योंकि सत की पहचान में एक दीवार खड़ी हो गई। उस दीवार को तोड़ने के लिये गुरू की सहायता की आवश्यकता बढ़ गई, समय में परिवर्तन आया, मनुष्य भी पूरी तरह से हउमै के अन्धेरे में प्रवेश कर गया और पूरी तरह से भूल गया कि मैं कौन हूँ ? मेरा वास्तविक रूप क्या है ? प्रभु क्या है ? संसार क्या है ? मेरा जीवन मनोरथ क्या है ? यह इतना भ्रमित हुआ कि इसने अपना जीवन मनोरथ माया इकट्ठी करना और माया की अनेक उपलधियों को प्राप्त करने में ही रम गया। गुरू महाराज जी फ़रमान करते हैं कि मनुष्य का सोच स्तर प्रेत के बराबर हो गया।

सतयुग में ब्रह्म की विचार करने वाले पुरुष थे, क्स्त्र लाख ख्त् हज़ार वर्षों का समय सतयुग के प्रभाव में बीता, तत्पश्चात द्वापर और त्रेता युग आये। त्रेता युग का समय क्छ लाख -म हज़ार साल बताया गया और द्वापर ट लाख म्ब हज़ार वर्षों के समय अवधि को माना गया। इसमें जीव मनुष्यता के स्तर से ऊपर रहा पर कलयुग में कदम रखते ही संसार में पापों का प्रसार हो गया, हर धर्म, धार्मिक स्थानों में पाखण्ड प्रधान हो गया, मदिरा, मांस, विषय भोग आम हो गये और जीव की वृति भूतों-प्रेतों के समान हो गई। जैसा कि फ़रमान है -

कलि महि प्रेत जिनी रामु न पछाता
सतजुगि परमहंस बीचारी।
दुआपुरि त्रेतै माणस वरतहि विरलै हउमै मारी।
कलि महि राम नामि वडिआई।
जुगि जुगि गुरमुखि एको जाता विणु नावै मुकति न पाई।
हिरदै नामु लखै जनु साचा गुरमुखि मंनि वसाई।
आपि तरे सगले कुल तारे जिनी राम नामि लिव लाई॥

पृष्ठ - 1131-32

कलयुग की साधना गुरू महाराज जी ने नाम मार्ग ही बताई है। प्राचीन समय में मनुष्य चार आश्रमों में से गुज़रता था, पहले को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा जाता था जिसमें वह महापुरुषों, विद्वानों द्वारा चलाये गये विद्यालयों में जाकर विद्या अध्ययन किया करता था। दूसरा आश्रम 25 से 50 वर्ष का था जिसमें मनुष्य गृहस्थ में प्रवेश करके बाल बच्चों का पालन पोषण किया करता था, अनेक प्रकार के कार्य व्यापार करके धन कमाता था और एक आदर्शमयी गृहस्थी बनकर जीवन व्यतीत किया करता था। इस गृहस्थ आश्रम में उसे अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते थे। 25 से 50 वर्ष तक का समय वानप्रस्थ आश्रम कहलाता था। इसमें गृहस्थ का पूर्णतया त्याग करके सारा कारोबार अपने बच्चों को संभाल कर उनके सुपुर्द करके। संसार की ओर से पीठ मोड़कर अन्तः खोज करने के लिये, बड़े-बड़े महान पुरुषों के आश्रमों में जाकर, अनेक प्रकार के तप, साधना के उपरान्त स्त्रभ वर्ष के बाद की आयु में सन्यासी होकर संसार को उपदेश दिया करते थे। पर ज्यों-ज्यों कलयुग का प्रभाव बढ़ता गया, संसार में अन्धकार फैलता गया और प्रभु को मिलने के लिये नये-नये मार्ग अपनाता चला गया। बेअन्त प्रकार के रास्ते चल पड़े और अनेक प्रकार के मज़हब बन गये। सत्य की खोज के स्थान पर कर्म प्रधान हो गये और दुनियाँ कर्मों-धर्मों में ही भ्रमित हो गई जैसा कि भाई गुरदास जी ने अपनी वारों में लिखा है -

भई गिलानि जगति विचि चारि वरनि आस्रम उपाए।
दसि नामि संनिआसीआ जोगी बारह पंथि चलाए।
जंगम अते सरेवड़े दगे दिगंबरि वादि कराए।
ब्रहमणि बहु परकारि करि सासत्रि वेद पुराणि लड़ाए।
खटु दरसन बहु वैरि करि नालि छतीसि पखंड रलाए।

तंत मंत रासाइणा करामाति कालखि लपटाए।
इकसि ते बहु रूपि करि रूपि कुरूपी घणे दिखाए।
कलिजुगि अंदरि भरमि भुलाए॥

भाई गुरदास जी, वार 1/19

तथा उस समय के जो कर्म थे उनके बारे में फ़रमान करते हुए उन्हें फोकट कर्म कहा जाता है कि –

कलिजुगि बोधु अउतारु है बोधु अबोधु न द्रिसटी आवै।
कोइ न किसै वरजई सोई करे जोई मनि भावै।
किसे पुजाई सिला सुंनि कोई गोरी मढ़ी पुजावै।
तंत्र मंत्र पाखंड करि कलहि क्रोधु बहु वादि वधावै।
आपो धापी होइ कै निआरे निआरे धरम चलावै।
कोई पूजै चंदु सूरु कोई धरति अकासु मनावै।
पउणु पाणी बैसंतरो धरमराज कोई त्रिपतावै।
फोकटि धरमी भरमि भुलावै॥

भाई गुरदास जी, वार 1/18

इस समय नाथों की सम्प्रदा, हठ योग में प्रवृत हो गई और बहुत ही कठोर साधन अपना कर परमपद की प्राप्ति के लिये प्रवृत होने लगे। बहुत से जिज्ञासु, पातंजलि ऋषि के बताये गये राजयोग के मार्ग को अपनाने लगे। ये साधन भी बहुत कठिन थे, जैसा कि बताया गया है –

सेखनाग पातंजल मथिआ गुरमुखि सासत्र नागि सुणाई।
वेद अथरवण बोलिआ जोग बिना नहि भरमु चुकाई।
जिउ करि मैली आरसी सिकल बिना नहि मुखि दिखाई।
जोगु पदारथ निरमला अनहद धुनि अंदरि लिव लाई।
असट दसा सिधि नउ निधी गुरमुखि जोगी चरन लगाई।
त्रिहु जुगां की बासना कलिजुग विचि पातंजलि पाई।
हथो हथी पाईऐ भगति जोग की पूर कमाई।
नाम दानु इसनानु सुभाई॥

भाई गुरदास जी, वार 1/14

‘चलता’